अगतिर्नास्ति किन्तु ब्रह्मावगतिर्भवत्येव । यद्वा ब्रह्म साक्षात्कारिणा ब्रह्मस्वरूपे प्रोक्ते सति अत्र संसारे गतिः भ्रमणं नास्ति तादृशगुरूपसदनवतः, यतः तादृशगुरूपदेशसामर्थ्यावगतपरमात्मयाथात्म्यो भवत्येव स इतिभावः । ऊहापोहविशिष्टः तर्ककुशलः स्वयमपि कथन्नावगच्छेत्, अवरप्रोक्तेऽपि तर्ककौशलेन वा कथन्न विज्ञातयाथात्म्यः स्यादित्याशंकां निराकर्तुमाह अणीयान् अणुप्रमाणात् । अणुप्रमाणात् अणोरपि अणीयान् अतिशयेनाणुरेव तर्केण हि अणुपरिमाणपर्यन्तं कश्चित्स्थापयितुमर्हति न ततोऽणुतरम् तत्र तर्कस्याप्रसरात् । इदञ्च ब्रह्मतत्वमणोरणुतरमिति हेतोः अप्रतर्क्यम् तर्कागोचरभूतम् अतो न स्वतर्कमात्रेण अवरोपदेशसहकृततर्केण वा ज्ञातुमर्हमितिभावः ॥८॥

इस परमात्म तत्व का वक्ता तथा ज्ञाता व्यक्ति आश्चर्य अतिदुर्लभ है ऐसा पूर्वमन्त्र में कहा गया है । परन्तु ऐसा क्यों है इसमें हेतु का कथन नहीं किया गया है तो उसमें कारण बतलाने के लिये कहते हैं-'**न नरेणावरेण**' इत्यादि से । अवरहीन अर्थात् प्राकृत बुद्धि वाला शरीरेन्द्रियादिक में आत्माभिमानवान् नर मनुष्य से समीचीन रूपसे समुपदिश्यमान भी यह

परमात्मा सुविज्ञेय नहीं है अर्थात् समीचीन रूपसे जानने के योग्य नहीं है क्योंकि वादी तत्तत् तान्त्रिकों से बहुधा अनेक प्रकार से अर्थात् **'अस्ति नास्ति'** इस रूपसे **कर्ता** है **अकर्ता** है इस रूपसे **नित्य** है **अनित्य** है एतादृश अनेक प्रकार से विचार्यमाण प्रकार बाहुल्य होने से। जिसने परमात्मा का साक्षात्कार किया है एतादृश पुरुष को जिसने प्राप्त परमात्मोपदेशक है उसे भी भ्रम अनिवार्य है। इसलिये जिसके उपदेश से असंदिग्ध रूपसे इस परमात्मा को जान सके एतादृश वक्ता उपदेशक व्यक्ति आश्चर्य है। एवं-आत्म साक्षात्कार जिसे हो गया है एतादृश व्यक्ति से उपदेश होने पर भी विषय वासनावान् अवर नर से समीचीन रूपसे परमात्मा जानने के योग्य नहीं है। इसलिये बिगत है विषय वासना जिसकी एतादृश ज्ञाता भी व्यक्ति कोई कोई ही है। **'अनन्य प्रोक्ते'** इति। अन्य स्वापेक्षया भिन्न कृत ब्रह्म साक्षात्कार वान् गुरु से कथित को अन्य प्रोक्त कहते हैं। तद्भिन्न गुरुपदेश के बिना स्वकीय बुद्धि व्यापार मात्र से विचिन्तित इस परमात्मस्वरूप में गति आवागमन अर्थात् सम्यक् ज्ञान किसी को नहीं होता है। यद्वा अनन्य से परमात्मा में स्वात्मत्व का अनुसंधान

वान् एकान्तिक रूपसे परमेश्वर साक्षात्कारवान् पुरुष से प्रोक्त कथित इस आत्म तत्व में अगति नहीं है किन्तु ब्रह्मावगति अवश्य मेव होती है। यद्वा ब्रह्म साक्षात्कारवान् पुरुष से जब ब्रह्मस्वरूप प्रतिपादित होने पर इस संसार में गति अर्थात् भ्रमण नहीं होता है। क्योंकि एतादृश गुरु के उपदेश के सामर्थ्य से परमात्मा का याथार्थ्यानुभव अवश्यमेव हो जाता है। ऊहापोह विशिष्ट तर्क में कुशल व्यक्ति स्वयमेव परमात्मा को क्यों नहीं जान सकता है अथवा अवर प्रोक्त में तर्क कुशलता से ब्रह्म याथार्थ्य को जान सकता है इस आशंका का निराकरण करने के लिये कहते हैं- '**अणीयान्**' इत्यादि से। अणु प्रमाणक यव शामा प्रभृति से भी अतिशयेन अणु है। तर्क द्वारा कोई व्यक्ति अणु परिमाणक पदार्थ पर्यन्त का ज्ञान कर भी सकता है, परन्तु अणु से भी जो अणुतर है उसे नहीं जान सकता है क्योंकि अणुतर वस्तु में तर्क का समावेश-प्राप्ति नहीं हो सकता है। यह जो ब्रह्मतत्व है वह अणु से भी अणुतर है इस कारण से यह ब्रह्मतत्व अतर्क्य है अर्थात् तर्क का विषय नहीं है इसलिये स्वकीय तर्कमात्र से अवर व्यक्ति के उपदेश सहकृत तर्क द्वारा जानने के योग्य ब्रह्म नहीं है ॥८॥

विशिनष्टि सत्यधृतिरिति, **सत्या अप्सरः प्रभृतिभिरपि अकम्पनीया धृतिः मनःस्थिरता यस्य तादृशः, हे नचिकेतः त्वादृशः त्वत्समः सत्यधृतिः प्रष्टा शिष्यो मे भूयात् । वतेत्यव्ययमनुकम्पायाम् । सा चानुकम्पा त्वादृशः प्रष्टा भूयादित्यनेन प्रदर्शिता भवति स्तुतिव्यञ्जनया ॥९॥**

जिस लिये परमात्मस्वरूप अप्रतर्क्य तर्क का विषय नहीं है इसलिये यह परमात्म विषयिणीमति स्वकीय बुद्धि संपादित ऊहापोह मात्र से प्राप्ति करने के योग्य नहीं हैं । अर्थात् परमात्म विषय में तर्क कौशल समर्थ नहीं होता है । यद्वा यह परमात्म विषयकमति गुरूपदेश का अतिक्रमण कर के केवल तर्क से दूर करने के योग्य नहीं है । अर्थात् ब्रह्मतत्व को जानने की इच्छावाला भी व्यक्ति केवल तर्क से उसे नहीं जान सकता है किन्तु ब्रह्ममति से अतिदूर हो जाता है । हे प्रेष्ठ प्रियतर नचिकेता ? अन्य से अर्थात् ब्रह्मतंत्व के साक्षात्कार करने वाले गुरु से समुपद्दिश्यमान ब्रह्म विषयक मति सुज्ञान अर्थात् मोक्ष साधनभूत ज्ञान के लिये होता है । वह मति कौन है इस जिज्ञासा में कहते हैं-**'यां त्वमापः'** इत्यादि से । जिस सर्वबन्ध विनिर्मोक्ष के उत्तर कालिक आत्मविषयक मति को तुमने मेरे वर प्रदान से

नैषा मतिस्तर्केणापनेया प्रोक्तान्येनैव सुज्ञानाय प्रेष्ठ । यां त्वमापः सत्यधृति वतासि त्वादृङ् नो भूयान्नचिकेतः प्रष्टा ॥९॥

प्रियतम नचिकेता ? तुमने जिस बुद्धि को प्राप्त किया है ऐसी तत्त्वज्ञान विषय वाली मति तर्क से प्राप्त नहीं की जा सकती तत्त्वज्ञाता आचार्य से उपदिष्ट ही मुक्तिरूप श्रेष्ठ ज्ञान प्राप्ति के लिये होती है । हे नचिकेता ? यह अतिहर्ष का विषय है कि तुम सत्य एवं धैर्यवान् हो हमें तुम्हारे जैसा तात्त्विक प्रश्न कर्ता साधक प्राप्त हो जिससे तत्त्वज्ञान का लाभ सभी को प्राप्त हो ॥९॥

यस्मात् परमात्मस्वरूपमप्रतर्क्यमतो हेतोः एषा परमात्मविषयिणी तर्केण स्वबुद्धिसम्पादितोहापोहमात्रेण न अपनेया न प्राप्तुमर्हा, तर्ककौशलमात्रं नात्र प्रभवतीत्यर्थः । यद्वा एषामतितर्केण गुरूपदेशमुल्लंघ्य केवलेन कृतेन न अपनेया न दूरीकार्या तर्कमात्रेण ब्रह्मतत्त्वमवजिगमिषुरपि नाधिगच्छति किन्तु ततोऽपगतैष भवति सावगतिरित्यैतत् । हे प्रेष्ठ? प्रियतमनचिकेतः अन्येन तत्त्वसाक्षात्कारिणा गुरुणा प्रोक्ता समुपदिष्टा एव मतिः सुज्ञानाय मोक्षसाधनभूताय ज्ञानाय भवति सा मतिः केति जिज्ञासायामुपदिशति यां मतिं सर्वबन्धविनिर्मोक्षोत्तरकालीनात्मविषयां त्वम् आपः मद्वरप्रदानेन प्राप्तुं कृतनिश्चयोऽसि त्वमित्येतदेव

प्राप्त करने के लिये तुम कृतसङ्कल्प हो अतः तुम सत्यधृति हो, सत्य अप्सरा प्रभृति से अकम्पनीय है, धृति मन की स्थिरता जिसे एतादृश तुम हो। हे नचिकेता ? तुम्हारे सदृश सत्य धैर्यशील प्रश्नकर्ता शिष्य मुझे मिले। मन्त्र घटक वत यह अव्यय पद अनुकम्पा अर्थ में है। यह अनुकम्पारूप अर्थ-'**त्वादृशः प्रष्टा मे भूयात्**' इस वाक्य से स्तुति व्याज से बतलाया गया है ॥९॥

जानाम्यहं शेवधिरित्यनित्यं न ह्यध्रुवैः प्राप्यते हि ध्रुवं तत्। ततो मया नाचिकेतश्चि तोऽग्निरनित्यैर्द्रव्यैः प्राप्तवानस्मि नित्यम् ।१०।

जीव के कर्म फलजनित सभी खजाने अनित्य हैं ऐसा मैं जानता हूँ अनित्य फल वाले कर्मों से वह नित्य परमतत्त्व निश्चय ही प्राप्त नहीं किया जा सकता है अतः मैने परतत्त्व प्राप्ति का कारण ज्ञान प्राप्ति हेतु अनित्य इंट आदि द्रव्यों से नाचिकेत नामवाले अग्नि का चयन किया है उससे नित्य फल का कारण ज्ञान को प्राप्त करलिया हूँ ॥१०॥

प्रसन्नो मृत्युः यथा परमात्मतत्वं ज्ञातवान् तदनेन मन्त्रेण नचिकेतसमुपदिशति-शेवधिः **निधिः तद्वद्भोग्य त्वात् सर्वमेव कर्मफलमित्यर्थः । अनित्यम् अत्र छान्दसं नपुंसकत्वम् अनित्य इति भाव्यम् निधिविशेष णत्वात् । अनित्यः न सदास्थायी जन्यत्वेन**

विनाशित्वात् । इति अहं मृत्युः जामानि सम्यग् वेद्मि । तत् परमात्मस्वरूपम् ध्रुवम् नित्यम् अत एव अध्रुवैर नित्यफलसाधनभूतैः कर्मभिर्न प्राप्यते । हि निश्चित मेतत् । ततः नित्यस्यानित्यफलसाधनैरप्राप्यत्वज्ञान वत्वादेव हेतोः मया मृत्युना नचिकेतः अग्निः नाचि केतनाम्नाख्यातः अग्निः अनित्यैरिष्टकादिद्रव्यैः परमात्म ज्ञानमुद्दिश्य फलान्तरनिरपेक्षया चितः निर्वर्तितः अतः नित्यं परमात्मप्राप्तिरूपनित्यफलसाधनं ज्ञानं प्राप्तवान् लब्धवानस्मि । यद्यपि ब्रह्मज्ञानमप्यनित्यम् तथापि नित्यफलसाधनत्वात् नित्यत्वमुच्चर्यते ॥१०॥

नचिकेता के ऊपर प्रसन्न यमराज ने जिसप्रकार परमात्म तत्व को जाना, उस चीज को इस मन्त्र से नचिकेता को यमराज उपदेश करते हैं-'**जानाम्यह मित्यादि**' शेवधि अर्थात् निधिः निधि के समान सभी कर्मफल भोग्य होने से निधिपद बोध्य होता है । अनित्यम् यहां जो नपुंसक का निर्देश है वह छन्द होने से, अन्यथा शेवधि का विशेषण होने से अनित्यः ऐसा पाठ होना चाहिये-'**अनित्यः**' इति । अनित्य अर्थात् सर्वदा स्थायी नहीं है जन्य होने से विनाशी है इस बात को मैं मृत्यु यमराज समीचीन रूपसे जानता हूँ । वह परमात्मस्वरूप ध्रुव अर्थात् नित्य है अतः अध्रुव अनित्य

फल के कारणीभूत यागादि कर्म द्वारा परमात्मस्वरूप प्राप्त नहीं होता है यह निश्चित है । तब नित्य वस्तु को अनित्य फल का कारणीभूत कर्म से अप्राप्य होने से ज्ञानरूप कारण से ही मैंने यमराज ने नाचिकेता नाम से प्रसिद्ध जो अग्नि उसे अनित्य इष्टाकादि द्रव्यों से आत्मज्ञान के उद्देश्य से फलान्तर से निरपेक्ष हो करके उस अग्नि का चयन किया है । अतः नित्य परमात्म प्राप्तिरूप जो नित्य फल तादृश फल का साधनीभूत जो ज्ञान उस ज्ञान को मैंने प्राप्त किया । अर्थात् तादृश ज्ञान मुझे लब्ध हुआ है । यद्यपि उत्पन्न होने के कारण ब्रह्मज्ञान भी अनित्य है तथापि नित्य जो मोक्षरूप फल तादृश मोक्ष के साधन होने से ब्रह्मज्ञान में नित्यत्व का उपचार होता है ॥१०॥

कामस्याप्तिं जगतः प्रतिष्ठां क्रतोरानन्त्यमभयस्य पारम् । स्तोमं महदुरुगायं प्रतिष्ठां दृष्ट्वा धीरो नचिकेतोऽत्यस्त्राक्षीः ॥११॥

हे नचिकेता ? धीर-स्थिर बुद्धि वाले तुमने लौकिक सभी कामनाओं की प्राप्ति तथा जगत की प्रतिष्ठा और यज्ञों के अनन्त फलों एवं अभयता के अन्तिम सीमा को तथा सत्यसंकल्प और अपहतपाप्मत्व तथा वेदों में अनेक रूपसे कथित यश एवं प्रतिष्ठा वाले परतत्व श्रीरामजी को देखकर धृति-धीरता से लौकिक अनित्य विषयों को

त्याग दिया है ॥११॥

विरक्तस्यैव ब्रह्मविद्यायामधिकार इति प्रदर्शयन् नचिकेतसः वैराग्यमनुस्मरति तं प्रशंसितुं प्रसादमापन्नो मृत्युरनेन मन्त्रेण । हे नचिकेतः क्रतोः कर्मणः यागादि रूपस्य प्रतिष्ठाम् फलरूपाम् जगतः जगत्सम्बन्धिनः ब्रह्माण्डान्तर्गतस्य चतुर्मुखस्थानपर्यन्तस्य सर्वस्य का मस्य कामनाविषयस्य आप्तिम् प्राप्तिम् दृष्ट्वा विचिन्त्य दुःखमिश्रत्व-दुःखोदर्कत्वाऽसदातनत्वविनाशित्वादि दोषसन्दोहविशिष्टविषयप्राप्तिरूपतया जघन्यामनित्याञ्चा वधार्य, परमपुरुषार्थे च आनन्त्यम् अन्तो विनाशस्तद्र हितोऽनन्तस्तस्य भाव आनन्त्यमविनाशित्वम् अभ यस्य त्रासराहित्यस्य पारम् चरमां काष्ठाम् स्तोमम् समुदायम् अपहतपाप्मत्वसत्यकामत्वसत्यसंकल्पत्वादि गुणानामाविर्भूतम् महत् महत्वम् भावप्रधाननिर्देशः, उरुगायः उरुः महान् गीयते इति गायः कीर्तिः, तमुरुगायं महतीकीर्तिम् प्रतिष्ठाम् स्थिरताञ्चापुनरावृत्ति स्वरूपां दृष्ट्वा समवधार्य मया दीयमानान् कामान् अत्यस्राक्षीः त्यक्तवानसि तस्मात् त्वं धीरः सारासारवि वेचनसामर्थ्यप्रज्ञावानसि । यद्वा मोक्षप्राप्तौ एव जगतः सर्वस्य प्राप्तिम् क्रतोः प्रतिष्ठाञ्चान्तर्गतां सत्यकामत्वादि गुणाविर्भावचिन्तनादवधार्य मया दीयमानां कामाप्तिम्

त्यक्तवानतः धीरोऽसीति योजनीयम् ॥११॥

सांसारिक विषय पुत्र कलत्र धनादि से विरक्त अधिकारी पुरुष को ही ब्रह्मविद्या में अधिकार है नतु संसारासक्त पुरुष को ब्रह्मविद्या में अधिकार है, इस बात को बतलाते हुए नचिकेता के वैराग्य का अनुस्मरण करते हुए प्रसन्न यमराज नचिकेता की प्रशंसा करते हैं प्रकृत मन्त्र से-'**कामस्याप्तिमित्यादि**' हे नचिकेता ? क्रतु यागादिक जो कर्म की प्रतिष्ठा जो कि फलरूप है उसे। तथा जगत् जगत्सम्बन्धी ब्रह्माण्ड के अन्तर्गत चतुर्मुख स्थान पर्यन्त सब काम के कामना विषय की आप्ति प्राप्ति को विचार करके अर्थात् दुःख मिश्रत्व अनित्यत्व विनाशित्वादि दोष समुदाय विशिष्ट विषय प्राप्तिरूप होने से क्रनिष्ठत्व अनित्यत्व का निश्चय करके तथा परमपुरुषार्थ में आनन्त्य विनाश राहित्य को तथा अभय त्रास रहितत्व के पार चरमकाष्ठा को तथा स्तोम समुदाय अपहतपाप्मत्व सत्यकामत्व सत्यसंकल्पत्वादि गुणों का आविर्भाव महत् महत्व यहां भाव प्रधान निर्देश है, उरुगाय महती कीर्ति तथा प्रतिष्ठा अर्थात् अपुनरावृत्ति स्वरूप स्थिरता का समीचीन रूपसे विचार करके हम से दीयमान कमनीय वस्तु को तुमने त्याग दिया। इसलिये तुम अत्यन्त धीर हो अर्थात् सार असार का जो

विवेचन उसका विवेचन करने में समर्थ बुद्धि विशिष्ट तुम हो। यद्वा मोक्ष की प्राप्ति होने पर संपूर्ण जगत् की प्राप्ति तथा क्रतु की प्रतिष्ठा तदन्तर्गत होती है इस बात को सत्यकामत्वादि गुण के आविर्भाव के चिन्तन से निश्चित करके हमसे दीयमान कामाप्ति का तुमने परित्याग कर दिया। अतः तुम सर्वथा धीर हो, इसप्रकार योजित करें ॥११॥

तं दुर्दर्शं गूढमनुप्रविष्टं गुहाहितं गह्वरेष्ठं पुराणम्। अध्यात्मयोगाधिगमेन देवं मत्वा धीरो हर्षशोकौ जहाति ॥१२॥

धीर-धैर्यवान् साधक कठिनतापूर्वक देखे जानेवाला गूढ-अपनी योग माया से ढका सभी जीववर्ग में अन्तःप्रविष्ट सभी के हृदय कमलरूप गुफा में निवास करनेवाले सभी जीवों में अन्तर्यामी रूपसे निवास करनेवाले पुराण-प्राचीन उस देव परमपुरुष श्रीरामजी को अध्यात्म योग के सहयोग से अनुभव कर हर्ष तथा शोक दोनों को छोड देता है ॥१२॥

एवं पूर्वमन्त्रोक्तक्रमेण नचिकेतसः मोक्षाधिकारं प्रशंस्य 'येयं प्रेते' इति मन्त्रेण पृष्टं मोक्षस्वरूपं प्रतिवक्तूमाह 'तमि'ति तम् पूर्वोक्तम् श्रवणायापि बहुभिर्यो न लभ्य इत्यत्र दुर्लभतया प्रतिपादित-मित्यर्थः। दुर्दर्शम् दुःखेन योगादिरूपदुःखेनान्तरीय

केन उपायेन द्रष्टुमर्हम् विरलसाधकदर्शनीयमित्येतत् । अत्र हेतूमाह गूढम् कर्मरूपया विद्ययाऽन्तर्हितम् । अनुप्रविष्टं अन्तर्यामिरूपेण सर्वभूतान्तर्गतम् । गुहाहितम् । गुहायाम् हृदयाकाशरूपायाम् आहितम् स्वरूपेणापि वर्तमानम् । गह्वरेष्ठम् गह्वरेरागद्वेषादिभिरतिसंकटे अन्तःकरणे स्थितम् । यद्वा गह्वरे दुष्प्रवेशे अप्राकृते साकेताख्ये प्रदेशे स्थितम् । यद्वा गह्वरे परिशुद्धस्वरूपे जीवे स्थितम् । पुराणम् पुरातनमनादिमिति यावत् । देवं निरतिशयम् दीप्यमानं परमात्मानमित्यर्थः तस्यैव सर्वातिशायिदीप्तिमत्त्वावगमात् श्रुतिश्च भवति 'यस्य भासा सर्वमिदं विभाति' एतावत् पर्यन्तमुपेयस्य स्वरूपमुक्तम् अध्यात्मयोगाधिगमेन आत्मानमधिकृत्य प्रवर्तितो योगः अध्यात्मयोगः परमात्मैकचिन्तनरूपः तस्य अधिगमः प्राप्तिः तेन । अनेन उपायस्वरूपमुक्तं भवति । केचन आत्मनि जीवस्वरूपे इति अध्यात्मम् तत्र योगः बाह्यविषयेभ्यः प्रत्याहृतस्य मनसः समाधानम् तेन योधिगमोज्ञानम् तच्च जीवात्मज्ञानम् तेन अध्यात्मयोगाधिगमेन, अनेन परिशुद्धजीवात्मज्ञानस्य परमात्मज्ञाने कारणत्वं समर्थितम् । मत्वा ज्ञात्वा ज्ञानञ्चेदं निदिध्यासनवेदनादिशब्दवाच्यसाक्षात्काररूपम् बोध्यम् । एतावता

विशुद्धजीवात्मज्ञानपूर्वकपरमात्मसाक्षात्काररूपः मोक्षस्योपायः प्रतिपादित इति वर्णयति । धीरः विवेचनकुशलमतिः हर्षशोकौ विषयलाभजन्यसुखविशेषो हर्षः तदलाभजन्यो दुःखविशेषः शोकः, जहाति परित्यजति, विषयलाभालाभप्रयुक्त सुखदुःखभाक् न भवति । आत्यन्तिकदुःखनिवृत्तिपूर्वकपरमात्मानुभव सहकृतपरमानन्दावाप्तिरूपं मोक्षमा पद्यते इतिभावः । अनेन फलं प्रतिपादितम् ॥१२॥

इसप्रकार पूर्व मन्त्रोक्त क्रम से नचिकेता के मोक्ष में अधिकारिता का प्रदर्शन करके-'**येयं प्रते**' इत्यादि मन्त्र से पूछा गया जो मोक्षस्वरूप उसे बतलाने के लिये कहते हैं-'**तं दुर्दर्शमित्यादि**' पूर्वकथित सुनने वालों के मध्य में अनेकों से जो लब्ध नहीं होता है । इसप्रकार में दुर्लभ रूपसे प्रतिपादित उस आत्मा को । वह कैसा है ? इस जिज्ञासा में कहते हैं-'**दुर्दर्शम्**' दुःख से अर्थात् योगादिरूप दुःख नान्तरीय उपायों से देखने के योग्य अर्थात् विरल साधक से दर्शनीय । आत्मा क्यों दुर्दर्श है ? इसमें कारण बतलाते हैं-'**गूढम्**' अतिगूढ है, अर्थात् कर्मरूप अविद्या से अन्तर्हित है । तथा अनुप्रविष्ट है अर्थात् अन्तर्यामी रूपसे भूतमात्र में अन्तर्गत है। तथा गुहाहित है अर्थात् हृदयाकाशरूप गुहा में

आहित स्वरूप से वर्तमान है। तथा गह्वरेष्ठ गह्वर में रागद्वेषादि मिलित अन्तःकरण में स्थित वर्तमान है। यद्वा गह्वर दुष्प्रवेश अप्राकृत साकेत नामक प्रदेश में वर्तमान है। अथवा गह्वर परिशुद्ध स्वरूप जीव में अन्तर्यामी रूपसे व्यवस्थित पुराण पुरातन आदि रहित, देव निरतिशय दीप्यमान परमात्मा श्रीरामजी को, वह परमात्मा ही सर्वातिशायी दीप्ति प्रकाशवान् है। श्रुति कहती है-'उस परमात्मा के प्रकाश से ये सब प्रकाशित होते हैं' इति। एतावत् पर्यन्त प्रकरण से उपेय प्राप्तव्य वस्तु के स्वरूप का प्रतिपादन किया गया है। **'अध्यात्म योगाधिगमेनेति'** आत्मा को अधिकृत करके प्रवृत्त जो योग उसे कहते हैं अध्यात्मयोग अर्थात् परमात्मैक चिन्तनरूप तादृशाध्यात्मयोग का जो अधिगम-प्राप्ति उसके द्वारा। इससे उपाय स्वरूप का प्रतिपादन किया गया है। कोई टीकाकार कहते हैं कि-आत्मा में अर्थात् जीवस्वरूप में उस जीवात्मस्वरूप में जो योग अर्थात् बाह्य विषय से परावर्तित मन का जो समाधान, उसके द्वारा होनेवाला जो अधिगम-ज्ञान, जीवात्म विषयक ज्ञान एतादृश अध्यात्म योगाधिगम से। इससे विशुद्ध जीवात्मज्ञान को परमात्मज्ञान में कारणता का समर्थन किया गया, मत्वा-जानकर, यह ज्ञान निदिध्यासन

वेदनादि शब्द वाच्य साक्षात्काररूप है ऐसा जानना चाहिये । एतावता विशुद्ध जीवात्म ज्ञानपूर्वक परमात्म साक्षात्काररूप है जो कि मोक्ष का उपाय है ऐसा प्रतिपादित होता है । इसप्रकार कोई "वर्णन" करते हैं ।

'धीरः' विवेचन कुशल बुद्धिवाले । हर्षशोक को उसमें विषय लाभजनित सुख विशेष का नाम हर्ष है, विषय के अलाभजनित दुःख विशेष का नाम शोक है । एतादृश हर्ष तथा शोक को छोड देता है, विषय के लाभ अलाभ प्रयुक्त सुख अथवा दुःखवान् नहीं होता है अर्थात् आत्यन्तिक दुःखनिवृत्तिपूर्वक परमात्मा का अनुभव साक्षात्कार तत्सहकृत परमानन्द प्राप्तिरूप मोक्ष को प्राप्त कर जाता है । इससे फल का प्रतिपादन हुआ ।१२।

एतच्छ्रुत्वा सम्परिगृह्य मर्त्यः प्रवृह्य धर्मम णुमेतमाप्य । स मोदते मोदनीयं हि लब्ध्वा निवृतं सद्म नचिकेतसं मन्ये ।।१३।।

तत्त्व जिज्ञासु मानव पूर्वोक्त आत्म तत्त्व के विषय में सत् आचार्य द्वारा श्रवण के वाद ठीक से ग्रहण-मनन कर धर्म से युक्त कर्म द्वारा साधन योग्य शरीर प्रभृति को अलग करके इस स्वात्मस्व रूप अणुरूप सर्वेश्वर श्रीरामजी को श्रीसाकेतधाम में प्राप्त कर प्रीति जनक अपहतपाप्म आदि आठ गुणों से युक्तता को प्राप्त कर हर्षवाला होता है । तुम्हारे नचिकेता के जैसे साधक के हेतु परब्रह्म श्रीरामजी

का श्रीसाकेतधाम खुला है ऐसा मैं मानता हूँ ॥१३॥

मर्त्यः उपलक्षणमेतदधिकारिमात्रस्य तेन, मनुष्य देवादिरूपोधिकारीत्यर्थः । एतत् पूर्वोक्तं परमात्म स्वरूपम् श्रुत्वा गुरूपदेशतो वेदान्तवाक्यद्वारा निश्चित्य सम्परिगृह्य सम्यक् संशयविपर्यासनिरासपूर्वक मवधार्य मननं कृत्वेति यावत् । उपलक्षकमिदं निदिध्यासनस्यापि तेन श्रवणमनननिदिध्यासनपूर्वकं साक्षात्कृत्वेत्यर्थः । धर्म्यम् धर्मशब्दः पुण्यपापरूप कर्ममात्रपरः, तेन कर्मसाध्यम् शरीरेन्द्रियादिकम् धर्म मित्युच्यते । प्रवृह्य प्रारब्धावसाने सति परित्यज्य अणुं सर्वतः सूक्ष्मम् पूर्वत्र निर्दिष्टम् एतम् परमात्मानं प्रत्यक्षविषयतोपलक्षिते एतच्छब्दप्रवृत्तेरेतच्छन्देन निर्देशं मृत्युः स्वप्रत्यक्षविषयत्वाभिप्रायेणऽकरोत् । आप्य अप्राकृते साकेताख्ये देशविशेषे प्राप्य सः उक्तोपासनाविशिष्टः उपासकोऽधिकारी, मोदनीयम् प्रीतिविशेषविषयीकृतम् आविर्भूतापहतपाप्मत्वादिगुणाष्टकं स्वकीयं वास्तवं बाह्यं स्वरूपं लब्ध्वा मोदते परमात्मानुभवरूपपरमानन्दभाक् भवति । 'सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चिता' 'परं ज्योतिरुपसम्पद्य स्वेनरूपेण निष्पद्यते' इत्यादिश्रुतिबोधितस्वरूपाविर्भावपूर्वकपरमात्मानुभवमोक्षशाली भवतीत्यर्थः ।

एवं नचिकेतसः प्रश्नस्योत्तरमभिधाय तस्य मोक्षयोग्यतामाख्याति नचिकेतसं त्वां प्रति सद्म ब्रह्मस्वरूपं धाम, विवृतं समुद्घाटितद्वारम् अत एव प्रवेशाय सुगमं मन्ये-जानामि मृत्युरहमिति शेषः । श्रुतिश्चास्यार्थस्योपोद्बलिका भवति 'तस्यैष आत्मा विशते ब्रह्मधामेत्यादि ॥१३॥

'एतच्छुत्वेत्यादि' मर्त्य-मरण धर्मामनुष्य, यहां मर्त्यपद अधिकारी मात्र का उपलक्षक है । इसलिये मनुष्य देवता प्रभृतिक सकल अधिकारी का बोध होता है यह पूर्वोक्त परमात्मस्वरूप का श्रवण करके अर्थात् गुरु के उपदेश से वेदान्तवाक्य द्वारा निश्चित करके- **'संपरिगृह्य'** संशय विपर्यय निरासपूर्वक मनन करके, यह उपलक्षण है निदिध्यासन का । इसलिये श्रवण मनन निदिध्यासनपूर्वक परमात्म साक्षात्कार करके । **'धर्म्यम्'** यहां धर्म शब्द पुण्यपापरूप कर्म का बोधक है इसलिये कर्मसाध्य शरीर इन्द्रियादिक धर्म पदवाच्य होता है । **'प्रवृह्य'** प्रारब्ध कर्म के अवसान हो जाने पर कर्मजनित शरीरादिक का परित्याग करके **'अणु'** सबसे सूक्ष्म जो कि पहले कहा गया है एतादृश आत्मा को प्रत्यक्ष विषयोंपलक्षित वस्तु में इदं तथा एतत् शब्द की शक्ति है । अतः स्वप्रत्यक्ष विषयीभूत परमात्मा का निर्देश एतत्

शब्द से यमराज ने किया। उस परमात्मा को अप्राकृत साकेत नामक देश विशेष में प्राप्त करके वह उक्त उपासना विशिष्ट उपासक अधिकारी मोदनीय प्रीति विशेष विषयीकृत आविर्भूत है अपहतपाप्मत्वादिक गुणाष्टक जिसमें एतादृश स्वकीय ब्राह्मस्वरूप को लाभ करके परमात्मा के अनुभव लक्षण परमानन्द को प्राप्त करता है। 'परम ज्योतिरूप परमात्मा को प्राप्त करके स्वकीय रूपसे अभिनिष्पन्न होता है' इत्यादि श्रुति बोधित स्वरूप के आविर्भाव पूर्वक परमात्मानुभवरूप मोक्षयुक्त होता है यह अभिप्राय है। यमराज इसप्रकार नचिकेता के प्रश्न का उत्तर दे करके नचिकेता की मोक्ष योग्यता का कथन करते हैं-'**नचिकेतसमित्यादि**' हे नचिकेता ? तुम्हारे लिये ब्रह्मस्वरूप धाम सदन को विवृत समुद्घाटित है द्वार जिसमें एतादृश अतएव प्रवेश करने में अतिसरल मैं समझता हूँ। श्रुति भी इस वस्तु को बतलाती है। उसका यह आत्मा ब्रह्मधाम मोक्ष को प्राप्त करता है ॥१३॥

अन्यत्र धर्मादन्यत्राधर्मादन्यत्रास्मात्कृताकृतात्। अन्यत्र भूताच्च भव्याच्च यत्तत्पश्यसि तद्वद ॥१४॥

नचिकेता यमदेव से पूछते हैं हे यमदेव ? जो तत्त्व धर्म अर्थात् उपाय से अन्यत्र यानी अलग है एवं अधर्म अर्थात् उपेय से भी भिन्न है और इस बुद्धि में किये गये एवं नहीं किये गये से भिन्न है तथैव भूतकाल एवं भविष्य काल से तथा वर्तमान काल से भी अलग है उस परतत्त्व को आप गुरुकृपा से देखते हो अतः उस परब्रह्म तत्त्व को कहिये ॥१४॥

अध्यात्मयोगाधिगमेन देवं मत्वा धीरो हर्षशोकौ जहातीत्यत्र मृत्युना अध्यात्मयोगाधिगमशब्देन समुपदिष्टमुपायम् देवमित्यनेन सूचिमुपेयम् मत्वा धीरः जहातीत्येतैः पदैर्बोधितमुपेतारञ्च सामान्यतोऽवगत्य विशेषतस्तज्ज्ञानाय नचिकेताः पृच्छति-अन्यत्रेति । धर्मात् विधेयतया वेदबोधितात् पुण्यापरपर्यायात् कर्मरूपात्प्रसिद्धात् स्वर्गादिफलकादुपायात् अन्यत्र. अन्यत् तथा अधर्मात् निसिद्धतया वेदबोधितात् प्रापाऽपरपर्यायात् प्रसिद्धात् नरकादिफलकात्कर्मरूपादुपायात् अन्यत्र भिन्नम् तत्प्रसिद्धमुपायान्तरं यत् त्वं पश्यसि तद्वद उपदिश । प्रसिद्धोपायभूतधर्माधर्मभिन्नमुपायान्तरं यत्पश्यसि त्वं तद् विनीताय विशेषतो जिज्ञासवे मह्यं बोधयेत्यर्थः । अनेन नित्यफलसाधनभूतः उपासनरूपोपायः पृष्टः । अन्यत्रास्मात् कृताकृतात् कृतञ्चाकृतञ्चेति समाहारद्वन्दः अत एव एकबद्भावः । तस्मादन्यत्र भिन्नम् । तस्मात् असमद् बुद्धिकार्यात्मना

वस्थितं तत्कृतम् यच्च कारणस्वरूपेणावस्थितं तद कृतमित्युच्यते । सर्वमेव इहलोके परलोके वा प्राप्य वस्तुकार्यरूपम् कारणरूपमेव वा न ततोऽतिरिक्तरूपम् न च तयोरन्यतरस्य द्वयोर्वा प्राप्त्या हर्षशोक परिहाणं दृष्टचरम्, अतः यत्प्राप्तिः हर्षशोकापहाराय कल्पेन तत्प्राप्यम् कृतादकृताच्चान्यदेव भवेत् तस्य स्वरूपं विज्ञातुं स्पृत्यालवे मह्यं सम्यक् वदेति । अनेन परमात्मरूपप्राप्यविषयकः प्रश्नः कृतः । अन्यत्र भूताच्च भव्याच्च । भूतात् अतीतात् कालात्, चकारेण अतीतकालावच्छिन्नात् अपि अन्यत्र अन्यत् । भव्यात् भविष्यतः कालात्, चेन भविष्यत्कालावच्छिन्नादपि अन्यत् । अनेनैव द्वितीयेन चकारेण वर्तमानकालः तत्परिच्छिन्नं वस्तु चोपलक्षितम् । अतः वर्तमानकालात् तत्परिच्छिन्नवस्तुनश्चाभिन्नम् यद् वस्तु 'धीरः' जहातीत्यनेन च सूचितम् तदुपेतृस्वरूपमेवेति तदपि श्रद्धालवे मह्यमुपदिशेत्यर्थः । अनेन उपेतुः स्वरूपं पृष्टम् । यद्वा भूतात् भव्यात् अस्मात् कृताकृता दन्यत्रेत्यनेन मिलितेन प्राप्यस्वरूपे पृष्टे प्राप्तुः स्वरूप मपि पृष्टं भवति, प्राप्तुः स्वरूपस्यापि प्राप्यान्तर्भावात् । मुक्तिदशायां प्राप्ता स्वीयं ब्राह्मं स्वरूपमपि गुणाष्टकविशिष्टं प्राप्नोत्येव । तस्यापि च कृताकृता

विलक्षणत्वकालापरिच्छिन्नत्वञ्च नित्यत्वादेव बोध्यम् । एतन्मन्त्रे उपायोपेत्रोः प्रश्नः तन्त्रेण कृतो नचिकेतसेति द्योतितो भवति ॥१४॥

'अध्यात्मयोगाधिगम से उस परमात्मा देव को जान करके धीर ज्ञाता पुरुष हर्ष तथा शोक का परित्याग कर देता है अर्थात् साकेत लोक को प्राप्त करके निरतिश यानन्द स्वरूप मोक्ष को प्राप्त कर जाता है' इस मन्त्र में यमराज से अध्यात्म योगाधिगम शब्द द्वारा कथित मोक्षोपाय को **'देवम्'** इससे सूचित उपेय प्राप्तव्य वस्तु और **'मत्वा धीरः जहाति'** इन सब पदों से बोधित उपेता प्राप्ति कर्ता को सामान्य रूपसे जान करके विशेष रूपसे ज्ञाता ज्ञेय तथा उपाय पदार्थ को जानने के लिये नचिकेता यमराज से प्रश्न करता है-**'अन्यत्र धर्मादित्यादि'** धर्म से अर्थात् विधेय रूपसे वेद बोधित पुण्य है अपर पर्यायक कर्मरूप से प्रसिद्ध स्वर्गफलक जो उपाय एतादृश उपाय से भिन्न तथा अधर्म से निषिद्धतया वेद प्रतिपादित अधर्म नाम से प्रसिद्ध नरक फलक कर्मरूप उपाय से अन्य भिन्न जो प्रसिद्ध उपायान्तर है जिसे आप जानते हैं उसका उपदेश मुझे दीजिये । प्रसिद्ध उपायरूप जो धर्म तथा अधर्म उससे भिन्न जिस उपायान्तर को आप जानते हैं उसका विनीत विशेष रूपसे जिज्ञासु मुझे

समझाइये । इससे नित्यफल मोक्ष का साधनभूत उपासना लक्षण उपाय का प्रश्न किया । 'अन्य तथा अकृत' से अन्य इसप्रकार समाहार द्वन्द्व है । अत एव एकवद्भाव हुआ इन दोनों से अन्य । अस्मदीय बुद्धि कार्यरूप से जो अवस्थित है उसका नाम है कृत । जो कारण स्वरूप से अवस्थित है में अथवा परलोक में सभी प्राप्य वस्तु है वह कार्यरूप है अथवा कारणरूप ही है किन्तु कार्य रूप कारण से भिन्न नहीं है । इन दोनों में से अन्यतर अथवा दोनों की प्राप्ति से हर्ष शोक का विनाश दृष्ट नहीं है इसलिये जिस वस्तु की प्राप्ति हर्ष शोक के परिहार के लिये समर्थ हो वह प्राप्य पदार्थ कृताकृत से भिन्न होगा । उसका जो स्वरूप तादृश स्वरूप को जानने के लिये स्पृहाशील मुझे आप समीचीन रूपसे कथन करें । इससे प्राप्य जो परमात्मा श्रीरामजी का स्वरूप तद्विषयक प्रश्न किया गया । **'अन्यत्रभूताच्चभव्याच्चेति'** भूत अतीत काल से और च शब्द से अतीत कालावच्छिन्न से भी जो भिन्न वस्तु है । भव्य अर्थात् भविष्यत् काल से भिन्न च शब्द से भविष्य कालावच्छिन्न पदार्थ का बोध होता है उससे भिन्न । इस द्वितीय चकार से ही वर्तमान काल तथा तदवच्छिन्न का बोध होता है उससे भी भिन्न जो वस्तु है । **'धीरः जहाति'** इससे सूचित जो उपेता

प्रापक का स्वरूप है वह भी श्रद्धाशील मुझे उपदेश दें। इससे उपेता का स्वरूप पूछा गया। अथवा **'भूतात्भव्यात् अन्यस्मात् कृताकृतात्'** इन मिलित पदों से उपेय स्वरूप का प्रश्न हुआ तब अधिकारी के अर्थात् प्रापक का स्वरूप भी पृष्ट हो ही गया क्योंकि प्रापक का जो स्वरूप है वह प्राप्य परमात्मा के स्वरूपान्तर्गत ही है। मोक्षकाल में प्रापक स्वकीय ब्राह्मस्वरूप गुणाष्टक विशिष्ट को प्राप्त करता ही है। प्राप्ता जो जीव है वह भी नित्य है इसलिये कृताकृत से विलक्षण तथा कालापरिच्छिन्न भी है। इस मन्त्र में उपाय तथा प्रापक का प्रश्न नचिकेता ने किया ऐसा द्योतित होता है ॥१४॥

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति। यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीमि ओमित्येतत् ॥१५॥

नचिकेता के प्रश्न के जवाव में यम कहते हैं-सभी वेद प्राप्त करने योग्य जिस पद का वारंवार निरूपण करते हैं एवं सभी तपस्यायें जिस प्राप्य तत्त्व श्रीरामजी को कहते हैं तथैव साधकजन जिस प्राप्य तत्त्व के प्राप्ति की इच्छा से ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हैं प्राप्य तत्त्वरूप उस पद को तुम्हारे हेतु संक्षेप में कहता हूँ वह प्राप्य तत्त्व ॐ इसप्रकार से निर्देशित होता है ऐसा जानो। **'रामनाम्नः समुत्पन्नः प्रणवो मोक्षदायकः'** श्रीरामनाम-'रां' इस बीज से उत्पन्न ॐकार मोक्ष देनेवाला है, ऐसा श्रीमद्रामायण में लिखा

है इसकी विशेष चर्चा श्रीवैष्णवमताब्जभास्कर की टीका तथा अन्य अनेक प्रबन्धों में किया हूँ विशेषार्थी वहीं देखें ॥१५॥

एवं पृष्टवतो नचिकेतसः आदरविशेषमुत्पादयितुं मृत्युः प्राप्यमहत्वं वर्णयन् सक्षिप्तं प्रणवोपासनं दर्शयति 'सर्वे' इति । सर्वे पूर्वभागापरभागरूपेण विभक्ता सकलावेदाः श्रुतयः साक्षात् परम्परया वा यत्पदम्पद्यते गम्यते इति पदम् प्राप्यस्वरूपम् यत्प्राप्य स्वरूपम् आमनन्ति बोधयन्ति । तत्र पूर्वभागस्य कर्तृ स्वरूपशक्रादिदेवताप्रतिपादनद्वारा तच्छरीरिणं पर मात्मानं बोधयन्तीति परम्परया बोधकत्वम्, परभा गस्य तूपनिषद्रूपस्य साक्षात्परमात्मबोधकत्वमिति विवेकः । तपांसि सर्वाणि अत्र तपः शब्देन तपःप्रधाना ऋषय उपलक्ष्यन्ते तपः शब्दश्च ज्ञानवाची प्रसिद्धः श्रुतिषु 'यस्य ज्ञानमयं तप' इत्यादिषु तथा विज्ञानमेव ये प्रधान्येन समाश्रयन्ते तादृशाः ऋषयः । सर्वाणि सर्वेऽपि सर्वशब्दे विशेष्यसापेक्षो नपुंसकप्रयोगः । सर्वे ज्ञानिनश्च यत् पदं प्राप्यस्वरूपं वदन्ति प्रति पादयन्ति । यद्वा सर्वाणि तपांसि कृच्छ्रचान्द्रायणा दीनि कर्माणि यत् यदर्थानि परम्परया यत्प्राप्यर्थानि वदन्ति वेदा एव । यदिच्छन्तः यत् प्राप्यस्वरूपं इच्छन्तः यत् प्राप्यमभिलषन्तो मुमुक्षवः ब्रह्मचर्यम्

अष्टविधस्त्रीसंगपरित्यागात्मकम् तदुपलक्षितं गुरूपसदनादिकञ्च चरन्ति सम्पादयन्ति तत् प्रसिद्धं पदम् प्राप्यस्वरूपं ते तुभ्यं संग्रहेण संक्षिप्तेन शब्देन ब्रवीमि बोधयामि । कोऽसौ संक्षिप्तः शब्दः प्राप्यंस्वरूपबोधक इत्यपेक्षायामाह 'ओमित्येतत् इति' । यथा घट इत्युक्तमनेनेत्यत्र इति शब्दः घटशब्दस्य स्वरूपपरिचायकः तथा ओमिति इत्यत्र इति शब्दः ओम् इत्यक्षरस्य स्वरूपपरिचायकः, एतच्छब्दस्तु ओंपदस्य विशेषणं सत् प्रत्यक्षविषयत्वमस्य बोधयति तथा एतद् श्रवणजन्यप्रत्यक्षविषयभूतम् ओम् इति अक्षरमेव संक्षेपेण प्राप्यस्य वाचकमित्यर्थः । 'तस्य वाचकः प्रणवः (योगसूत्र) 'ओं तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः' इत्यादिवचनजातमपि ओङ्कारस्य परमात्मस्वरूपप्राप्यवाचकत्वम् समर्थकम् । एतेन प्रणव-प्रतिपाद्यत्वरूपं प्राप्यविभुत्वम् प्रणवोपासनरूपोपायश्च प्रदर्शितः ॥१५॥

उपर्युक्त प्रकार से पूछने वाले नचिकेता के आदर विशेष का उत्पादन करने के लिये यमराज प्राप्य परमात्मस्वरूप का वर्णन करते हुए संक्षेप रूपसे प्रणव ओंकारोपासना को बतलाते हैं-'**सर्वे वेदा**' इति । सब पूर्वकाण्ड उत्तरकाण्डरूप विभाग से विभक्त जो सकल

वेद श्रुति समुदाय साक्षात् परम्परया जिस पद का जो गम्यमान हो वह प्राप्य स्वरूप उसे पद कहते हैं। उस प्राप्य स्वरूप का प्रतिपादन करता है। उसमें कर्ता का स्वरूप तथा शक्रादि देवता के स्वरूप के प्रतिपादन द्वारा कर्तादि शरीरी परमात्मा को वेद का पूर्वभाग समझाता है इसलिये परम्परया परमात्मा बोधकता पूर्वभाग को होता है और उत्तरभाग जो है वह उपनिषद् रूप है इसलिये वह साक्षात् देव परमात्मा का बोधक है, इस प्रकार दोनों भागों में भेद है। **'तपांसि सर्वाणीत्यादि'** यहां तप शब्द से तपस्या है प्रधान जिनमें एतादृश ऋषि लोग उपलक्षित होते हैं। और तप शब्द ज्ञान का वाचक है ऐसा जिसका ज्ञानरूप ही तप है इत्यादि श्रुतियों में प्रसिद्ध है। एतादृश विज्ञान को ही प्रधानरूप से जो आचरण करते हैं तादृश ऋषि लोग सभी, यहां सर्व शब्द के विशेष्य सापेक्ष होने से नपुंसक का प्रयोग किया गया है। सब ज्ञानी लोग जिस पद का अर्थात् प्राप्य के स्वरूप का प्रतिपादन करते हैं। यद्वा सब तपस्या कृच्छ्रचान्द्रायणादिक कर्म विशेष जिसके लिये हैं अर्थात् जिस प्राप्य की परम्परया प्राप्ति के लिये कथन करते हैं। **'यदिच्छन्त'** इति। जिसकी इच्छा करते हुए अर्थात् जिस प्राप्य स्वरूप की प्राप्ति करने के लिये

मुमुक्षु लोग ब्रह्मचर्य आठ प्रकार के स्त्री परित्याग लक्षण ब्रह्मचर्य तथा ब्रह्मचर्योपलक्षित गुरूपसदनादिक का सविधि सम्पादन करते हैं, वह प्रसिद्ध जो पद प्राप्य स्वरूप उसे मैं तुम्हें संक्षिप्त शब्द द्वारा कथन करता हूँ। कौन वह संक्षिप्त शब्द है जो कि प्राप्य स्वरूप का बोधक है ? इस जिज्ञासा के उत्तर में कहते हैं **'ओम्'** यह शब्द है अर्थात् प्राप्य परमात्मा का बोधक ओम् इत्याकारक अक्षर है। जिस तरह **'घट इत्युक्तमनेन'** (इसने घट इस शब्द को बोला) इस वाक्य में इति शब्द घट का स्वरूप परिचायक है इसी तरह **'ओमिति'** यहां इति शब्द ओम् इस अक्षर के स्वरूप का परिचायक है। और **'ओमित्येतत्'** ओम् पद का विशेषण होता हुआ प्रत्यक्ष विषयत्व ओम् को बतलाता है अर्थात् यह श्रवण जन्य प्रत्यक्ष विषयीभूत ओम् इत्या कारक अक्षर ही प्राप्य परमात्मा का वाचक है। 'परमात्मा का वाचक ओंकार है' इस योगसूत्र से तथा **'ओम् तत् सत्'** ये तीनों ब्रह्म के बोधक हैं इत्यादि वचन समुदाय ओंकार को परमात्म स्वरूप वाचकता का समर्थन करता है। इससे प्राप्य परमात्म स्वरूप का तथा प्राप्य प्रणवोपासन लक्षण उपाय का प्रदर्शन कराया गया ॥१५॥

एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्म एतद्ध्येवाक्षरं परम् ।

एतद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत् १६

पूर्व मन्त्र में वर्णित यह ओम् काररूप अक्षर ही नियत रूपसे परब्रह्म श्रीराम प्राप्ति का साधन है अतः वह ब्रह्म है यही प्रणव ॐ कार सभी वेदों में श्रेष्ठ है अतः इस ओंकार अक्षर को यथार्थ रूपसे उपासना द्वारा जानकर साधक पुरुष जिस पदार्थ की इच्छा करता है वह उसे नियत रूपसे प्राप्त कर लेता है ॥१६॥

संप्रति प्रणवप्रशंसां मन्त्रद्वयेन करोति । एतत् एव इदमेव ओङ्काररूपमक्षरम् ब्रह्म स्वजपादिना ब्रह्म प्राप्तिसाधनमित्यर्थः । ब्रह्मप्राप्तिसाधने ब्रह्मत्वारोपात् प्रणवस्य प्रशंसाऽभिव्यज्यते । 'एतद्ध्येवाक्षरं परम्' इदमेव प्रणवरूपमक्षरं जपनीयेषु ध्यातव्येषु च वस्तुषु श्रेष्ठमित्यर्थः । प्रणवजपस्य तद्ध्यानस्य चेतरजपाद्य पेक्षया शीघ्रेण परमात्मप्रतिपत्तिकारकत्वात् अस्य श्रेष्ठत्वं सिद्ध्यति । उभयत्र हि पदम् प्रसिद्धिद्योतकम्, अस्य आरोपितब्रह्मत्वं जप्यादिश्रेष्ठत्वञ्च सिद्धं वेदेष्वित्यर्थः । 'एतद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वा' एतत् अक्षरं प्रणवं ज्ञात्वा समुपास्य यः प्रणवोपासकः यत् वस्तु इच्छति कामयते अनेन मे इदं स्यादिति, तद् वस्तु तस्य सिद्ध्यति प्राप्तं भवतीत्यर्थः । हि पदमत्रापि पूर्वोक्तार्थम् ॥१६॥

पूर्व मन्त्र प्रदर्शित प्रणव का अग्रिम मन्त्रद्वय से

प्रशंसा करने के लिये कहते हैं **'एतद्ध्येवाक्षरमित्यादि'** यही ओंकार लक्षणअक्षर ब्रह्म हैं अर्थात् स्वकीय जपादि द्वारा ब्रह्म प्राप्ति में साधन आलंबनरूप हैं। ब्रह्म की प्राप्ति में साधनरूप ओंकार में ब्रह्मत्व का आरोप होने से प्रणव की प्रशंसा का व्यञ्जनया प्रतिपादन किया गया। यही प्रणवरूप अक्षर पद सर्वतः श्रेष्ठ है अर्थात् यही प्रणवरूप अक्षर जपनीय तथा ध्यातव्य वस्तुओं में अतिशयेन श्रेष्ठ है। प्रणव का जप तथा ओंकार का जो ध्यान है वह इतर जप की अपेक्षा से शीघ्र परमात्मा को समझाने वाला है इसलिये अन्य की अपेक्षा से इसमें श्रेष्ठत्व सिद्ध होता है। दोनों जगह में जो 'हि' शब्द है वह प्रसिद्धि का द्योतक है। इस ओंकार में आरोपित ब्रह्मभाव तथा जपनीय में श्रेष्ठता वेद प्रसिद्ध है **'एतद्ध्येवेत्यादि'** यह जो प्रणवरूप अक्षर है उसे जान करके अर्थात् उसकी उपासना करके जो प्रणव की उपासना करनेवाला पुरुष है वह मुझे इस उपासना से अमुक वस्तु प्राप्त हो इसप्रकार कामना करता है उसे वह पदार्थ सिद्ध होता है अर्थात् जिस वस्तु की कामना से उपासना करता है उस वस्तु की प्राप्ति उसे उस उपासना के बल से शीघ्र ही होती है। यहां भी **'हि'** पद प्रसिद्धि का ही बोधक है अर्थात् एतादृश प्रणव माहात्म्य

वेद में प्रसिद्ध है ॥१६॥

एतदालम्बनं श्रेष्ठमेतदालम्बनं परम् ।
एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते ॥१७॥

उपासना हेतु यही ओंकार स्वरूप आलम्बन अर्थात् आधार सर्वश्रेष्ठ है एवं यही ओंकार स्वरूप आलम्बन सभी साधनों से उत्तम है इसी ओंकाररूप आलम्बन को सदाचार्य के सदुपदेश द्वारा ठीक तरह से जानकर साधक ब्रह्मलोक यानी श्रीरामधाम में पूजित होता है ॥१७॥

यदालम्ब्य समाश्रित्य परं ब्रह्म देवतान्तरं समुपास्यते तदालम्बनम् विषय इत्येतत् । यथा गायत्रीं द्वादशाक्षरमप्यक्षरं वा समालम्ब्य परमपुरुषः उपास्यते केनचित् केनचित्तु ओङ्कार एवालम्ब्यते तदुपासने अतः गायत्र्यादेरिवोंकारोऽपि आलम्बनं एवं बहुष्वालम्बेषु सत्स्वपि एतद् ओङ्काररूपमालम्बनमालम्बनान्तरापेक्षया श्रेष्ठं ध्यानादिक्रियासु । अत एव एतद् ओंकाररूपम् आलम्बनं यस्य तादृशं ध्यानादिकम् अन्यालम्बनध्यानाद्यपेक्षया परम् उत्कृष्टम् । एतद् ओङ्काररूपम् एव परमपुरुषोपासने आलम्बनम् ज्ञात्वा सम्यग् निर्णीय तदालम्बनकोपासनविधानद्वारा ब्रह्मलोके ब्रह्मणः श्रीरामाख्यस्य लोके साकेताख्ये महीयते पूज्यते सत्कारपात्रं भवतीति । अत्र 'ओमित्येनेनैवाक्षरेण परमपुरुषमभिध्यायिते'त्यादिश्रुतिश्च भवति । ओ

ङ्कारालम्बनकपरमपुरुषध्यानविधायिनीत्यनुसंधेयम् १७

'एतदालम्बनमित्यादि' जिसका आलम्बन करके यद्वा आश्रय करके परब्रह्म अथवा देवतान्तर की उपासना की जाती है उसे आलम्बन विषय कहा जाता है। जैसे गायत्री या द्वादशाक्षर अथवा एक भी अक्षर को आलम्बन करके परमपुरुष की उपासना की जाती है कोई तो परमपुरुष की उपासना में ओंकार को ही आलम्बन करता है अतः गायत्री प्रभृति के समान ओंकार भी आलम्बन है। अनेक आलम्बन के रहते हुए भी यह ओंकाररूप आलम्बन इतर आलम्बनापेक्षया ध्यानादि क्रियाओं में श्रेष्ठ प्रशस्यतर है। अत एव ओंकार रूप आलम्बन जिसमें है एतादृश ध्यानादिक अन्य आलम्बन की अपेक्षा से पर अत्युत्कृष्ट है। यही ओंकार रूप आलम्बन ही परमपुरुष की उपासना में अतिशयोपयोगी है ऐसा जान करके निर्णय करके ओंकार आलम्बनक उपासना द्वारा ब्रह्मलोक में श्रीरामाख्य ब्रह्म के लोक श्रीसाकेत में वह उपासक पूजित होता है अर्थात् सत्कार का पात्र होता है। यहां **'ओम्'** इत्याकारक अक्षर से परमपुरुष का अधिध्यान करता है इत्यादि श्रुति भी उपोद्बलक होती है ओंकारालम्बनक परमपुरुष के ध्यान का प्रतिपादन करती है ॥१७॥

न जायते म्रियते वा विपश्चिन्नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित् । अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ।१८।

हे नचिकेता ? तुमसे जिज्ञासित यह जीवात्मा न उत्पन्न होता है अथवा यह जीवात्मा मरती ही है स्वरूपतः ज्ञानस्वरूप यह जीवात्मा जन्म एवं मृत्युरूप दोनों धर्म से रहित है तथा कोई भी जीव किसी से एवं कहीं से तथा कभी भी नहीं उत्पन्न हुआ है क्योंकि यह जीवात्मा नित्य एवं अज-जन्मरहित है तथा शाश्वत यानी सर्वदा एक रूपसे रहता है और पुरातन है इसके कर्मफल भोगार्थ प्राप्त शरीर के मारे जाने पर भी यह जीव नहीं मारा जाता है ॥१८॥

एवमोङ्कारस्य ब्रह्मोपासनायामुत्कृष्टालम्बनत्वमभिधाय उपासकस्य प्रत्यगात्मनः स्वरूपमुपदिशति प्रथमम् 'न जायत' इत्यादिमन्त्रद्वयेन । विपश्चित् स्वरूपतो मेधावी, अयमात्मा न जायते नोत्पद्यते, म्रियते अत्रापि नञः सम्बन्धात् न म्रियते न नश्यति वा शब्दस्समुच्चयार्थः तेन च जन्ममरणं नास्य प्रत्यगात्मनो भवत इत्यर्थः । अयं प्रत्यगात्मा जीवः कुतश्चित् उत्पादकात्कारणात् उत्पन्नो नास्तीत्यर्थः । उत्पादकमेवास्य न किमप्यस्तीत्येतत् । 'न जायते' इत्यनेनोत्पत्तिर्निषिद्धा 'न कुतश्चित्' इत्यनेन तु उत्पत्ति कारणं निषिद्धमित्युभयथा निषेधस्य नित्यत्वदृढीकरणे

तात्पर्यमतो न पौनरुक्त्ययमितिध्येयम् । कश्चित् देवमनुष्यादिरूपार्थान्तरभूतोऽपि न बभूव स्वयमपि न कदापि न जात इत्यर्थः । अनेन स्वतोऽप्युत्पत्तिमत्त्वं निषिध्यते इतिभावः । अयमात्मा अजः अजायमानत्वादेव अज इत्युच्यते इत्यर्थः । नित्यः अविनाशित्वादेव च नित्य इति व्यवह्रियते शास्त्रेष्वित्यर्थः शाश्वतः शश्वत् निरन्तरमेकरूपेण तिष्ठतीति शाश्वतः सदैकरूपो यतस्तस्योत्पादको नास्ति यस्य तूत्पादकः स कदाचित् रूपान्तरमप्युपैति । पुनः पुनः क्रियमाणे वस्तुनि रूपान्तरभावस्य दर्शनात् अयं न तथा कदाचिदितिभावः । पुराणः पुरा पूर्वं मनुष्यादिरूपेण कदापि न बभूवेत्ययं पुराण अनादिः यो हि शाश्वतः स पुराण इति गीयत एवेति भावः । यत एवमयं प्रत्यगात्मा तस्मात् शरीरे शस्त्रादिभिर्हन्यमाने हिंस्यमाने न हन्यते न हिंस्यते शाश्वतनित्यस्य शस्त्रादिघातैरव्यापाद्यत्वात् । शरीरान्तर्गतत्वादस्य शरीरघाते हननमवर्जनीयम् इति चेत् भ्रान्तोऽसि विनाशशीलमेव तदन्तर्गतं तद्विनाशे विनश्यति नातत्स्वभावम् यथा शरीरान्तःस्थितमाकाशम् तथैव चायमात्मा, अतो न नश्यतीतिभावः ॥१८॥

इसप्रकार ओंकार को ब्रह्म की उपासना में अति

उत्कृष्ट आलम्बनभाव का कथन करके उपासना करनेवाला जो जीव पुरुष है तादृश जीव के स्वरूप का प्रथमतः उपदेश करते हैं-'न जायते' इत्यादि मन्त्रद्वय से। विपश्चित् स्वरूपतः विद्वान् मेधावी यह आत्मा देहेन्द्रियादि का अध्यक्ष पुरुष जनित क्रिया का कर्म नहीं होता है अर्थात् उत्पन्न नहीं होता है प्रागभाव का प्रतियोगी नहीं होता है जो पदार्थ प्रागभाव का प्रतियोगी होता है वही उत्पन्न होता है। 'म्रियते' यहां भी नञ् का सम्बन्ध होने से नहीं मरता है अर्थात् विनष्ट नहीं होता है जो विनाश का प्रतियोगी होता है वह विनष्ट कहलाता है यह विनाश रहित आत्मा है। वा शब्द समुच्चयार्थक है इसलिये इस आत्मा का जन्म मरण नहीं होता है यह अर्थ होता है। यह प्रत्यगात्मा जीव किसी भी उत्पादक कारण से उत्पन्न नहीं होता है अर्थात् इसका उत्पादक कारण ही कोई नहीं है 'न जायते' इस ग्रन्थ से जीव की उत्पत्ति का निषेध किया गया है और 'न कुतश्चित्' इसप्रकरण से उत्पत्ति कारण निषिद्ध होता है, इस तरह दोनों प्रकार के निषेध को नित्यत्व के दृढीकरण में तात्पर्य है। अतः पुनरुक्तिदोष नहीं होता है। कश्चिदिति देवमनुष्यादिरूप अर्थान्तरभूत भी नहीं हुआ स्वयं कदापि नहीं हुआ इससे स्वतः उत्पत्तिमत्त्व का भी आत्मा में

निषेध किया गया । यह जीवात्मा अज है जायमान उत्पद्यमान नहीं होने से अज कहलाता है । और अविनाशी होने के क़ारण से शास्त्र में नित्य रूपसे व्यवह्रियमाण होता है । '**शाश्वत**' है शाश्वत सर्वदा एक रूपसे जो अवस्थित रहे उसे शाश्वत कहते हैं अर्थात् सदा एकरूप । जिसलिये उसका कोई उत्पादक नहीं है । जिसका कोई उत्पादक होता है वह कदाचित् रूपान्तर को प्राप्त करता है पुनः पुनः क्रियमाण वस्तु में रूपान्तरभाव देखने में आता है यह आत्मा तो कदाचिदपि ऐसी नहीं होती है । '**पुराण**' इति पूर्वकाल में कभी भी मनुष्यादिरूप से कभी भी नहीं हुआ । इसलिये यह पुराण अनादि है जो शाश्वत हो वह पुराण है ऐसा कहा जाता है जिसलिये यह प्रत्यगात्मा यथोक्त स्वभाव वाला है इसलिये शस्त्रादि द्वारा शरीर को हिंसित होने पर भी हिंसित नहीं होता है । जो शाश्वत नित्य है वह शस्त्रादिघात से मारा नहीं जाता है ।

प्रश्न-यह जीवात्मा तो शरीर के अन्तर्गत है तब शरीर का घात होने पर इस जीवका घात भी अवर्जनीय है ?

उत्तर-तुम भ्रान्त हो, जोविनाशशील वस्तु है वही शरीर के विनाश होने पर विनष्ट होता है किन्तु जो विनाशशील नहीं है वह यदि शरीर के अन्तर्गत भी है

तथापि शरीर विनाश होने पर विनष्ट नहीं होता है। जैसे शरीरान्तर्गत आकाश शरीर का विनाश होने पर भी विनष्ट नहीं होता है ॥१८॥

हन्ता चेन्मन्यते हन्तुं हतश्चेन्मन्यते हतम् ।
उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते ।१९।

कोई किसी का वध कर्ता यदि स्वयं वध करने में सक्षम समझता हो और वध किया हुआ को कोई मारा गया समझता है तो वे दोनों ही जीवात्मा के स्वरूप को अच्छी तरह से नहीं जानते हैं क्योंकि यह मारने वाला जीवात्मा को न मार ही सकता है या यह जीवात्मा न मारा ही जा सकता है ॥१९॥

हन्ता देहगतस्यापि हन्तृत्वस्यात्मनि अभिमानवान् अहमस्य हन्ताऽस्मीत्यध्यवसायविशिष्टः कश्चित् हन्तुं मन्यते चेत् 'अहमेनं हन्मि, अहमेनं वधिष्यामि' इत्येवं सङ्कल्पयति चेत्, मत्तः कश्चित् देहात्मदृष्टिः केनचित् शरीरं छिन्नं दृष्ट्वा आत्मानं हतं छिन्नं मन्यते 'अहमनेन हतः' इति सङ्कल्पयति चेत्, तौ आत्मनि हन्तृत्वाभिमानवान् हतत्वाभिमानवांश्च एतौ उभौ अपि न विजानीतः याथार्थ्येन आत्मस्वरूपं नावगच्छत इत्यर्थः। यतः अयं हन्ता न हन्ति आत्मानमिति शेषः। किन्तु शरीरमेव हन्ति तस्यैव विनाशशीलत्वात्, तथा नहन्यते आत्मा अनेनेति पूरणीयम् । हन्तृत्वाभि-

मानवता कृतेऽपि शस्त्रप्रहारे आत्मस्वरूपं न विनश्यति नित्यत्वात् अविनाशस्वभावत्वात् च, तस्मात्तौ न सम्यक् आत्मस्वरूपाभिज्ञावितिभावः ।

इदं मन्त्रद्वयं परमात्मपरंतया कैश्चिद् व्याख्यातम् जन्ममरणादिविकाराभावस्य हन्तृत्वहतत्वाद्यभावस्य परमात्मन्यपि सूपपादत्वात्तदिदमनादरणीयम् । 'न हन्यते हन्यमाने शरीरे' इतिहन्यमानप्राकृतशरीरसं-बन्धित्वनिर्देशस्य 'उभौ तौ न विजानीतः' इत्यज्ञत्वाभि धानस्य च जीवे एव संगतत्वेन परमात्मपरत्वेऽसं भवद्रूपतया च जीवपरत्वस्यैवोपचितत्वात् । लोक सिद्धहन्तृहतभावभ्रान्तेर्निरासाय अस्य मन्त्रद्वयस्य प्रवृत्तेः । तस्याश्च भ्रान्तेः परमात्मनि कस्यचिदप्यभा वात् । तस्माज्जीवस्वरूपपरतैवावसेयेतिभावः ॥१९॥

'हन्ताचेदित्यादि' हनन करने वाला अर्थात् शरीरवृत्ति जो हन्तृत्व धर्म तादृशधर्म का आत्मा में अभिमानवान् मैं इसे मारने वाला हूं, एतादृश अध्यव सायविशिष्ट कोई व्यक्ति 'हन्तुं मन्यते चेदिति' मैं इसे मारता हूं, मैं इसे मारुँगा, ऐसा यदि संकल्प करता है और कोई देह में आत्मदृष्टि वाला, किसी से कटा हुआ शरीर को देख करके आत्मा को हत छिन्न मानता है, मैंने इसे मारा एतादृश संकल्प करता है ये दोनों आत्मा

में हन्तृत्वाभिमानवान्, तथा मैं मारा गया इत्याकारक अभिमानवान् ये दोनों ही नहीं समझते हैं-यथार्थ रूपसे आत्मा के स्वरूप को ये दोनों नहीं समझते हैं। जिसलिये यह हन्ता आत्मा को नहीं मारता है किन्तु शरीर ही नष्ट होता है क्योंकि शरीर ही विनाशशील है तथा आत्मा नहीं मारी जाती है। अर्थात् हन्तृत्वाभिमान पुरुष से शस्त्र प्रहार करने पर भी आत्मस्वरूप विनष्ट नहीं होता है क्योंकि आत्मा नित्य है अविनाश स्वभाव वाला है। इसलिये दोनों समीचीन रूपसे आत्मस्वरूप को नहीं जानने वाले हैं।

इन दोनों मन्त्रों को किसी टीकाकार ने परमात्म स्वरूप परकत्वेन व्याख्यान किया है जन्ममरणादिक विकार का अभाव तथा हन्तृत्व हतत्वादि का अभाव तो परमात्मा में भी संभवित है। परन्तु यह व्याख्यान आदरणीय नहीं है क्योंकि **'न हन्यते हन्यमाने शरीरे'** इससे प्रकृतिजनित शरीर सम्बन्ध का निर्देश तथा **'उभौ तौ न विजानीतः'** इससे अज्ञत्व का जो कथन किया है वह तो जीव में ही संगत होता है परमात्म परकता में तो असंभव हो जाता है। अतः इन मन्त्रद्वय को जीव परकत्व कहना ही ठीक है। लोकसिद्ध जो आत्मा में हन्तृ हत भाव का भ्रम है तादृश भ्रम का निराकरण

करने के लिये ये दोनों मन्त्र प्रवृत्त हुए हैं परमात्मा में हन्तृ हत भाव का भ्रम तो किसी को नहीं होता है। इसलिये ये दोनों मन्त्र जीव स्वरूप का ही प्रतिपादन करते हैं, ऐसा मानना ही उचित है, व्याख्यानान्तर उचित नहीं है ॥१९॥

अणोरणीयान् महतो महीयानात्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम् । तमक्रतुः पश्यति वीतशोको धातुः प्रसादान्महिमानमात्मनः ॥२०॥

परमात्मा अणुरूप चेतन जीवात्मा से भी अति अणु-महासूक्ष्म है एवं आकाश प्रभृति महान् पदार्थ से भी अति महान् है वह परमात्मा श्रीराम इस जीवात्मा के हृदय कमलरूपी गुफा में विराजमान है उस परब्रह्म श्रीरामजी को निष्काम कर्म करनेवाले जीवात्मावर्ग सभी के आधार श्रीरामजी की कृपा से स्वयं की आत्मा के महिमा यानी सर्वज्ञत्वादि स्वरूप को देख लेता है तब शोकरहित हो जाता है ॥२०॥

एवं जीवस्वरूपमुपवर्ण्य तस्याप्यात्मभूतं परमात्मस्वरूपमुपदिशति अणोरित्यादि । अणोः सूक्ष्मरूपब्रीहिसर्पपादिभ्योऽपि सूक्ष्मात् चेतनादपि अणीयान् अतिशयेन सूक्ष्मः अणुपरिमाणात् जीवानपि व्याप्तुमर्हः । महतः पहत्परिमाणवतः पृथिव्याकाशादेरपि महीयान् अतिशयेन महान् पृथिव्याकाशादिकमपि व्याप्तुमर्ह इत्यर्थः । तादृशं किमपि सूक्ष्मं महद्वा वस्तु

नास्ति पदयं परमात्मा व्याप्नोति 'अणीयान् व्रीहेर्वा यबाद्वा सर्षपाद्वा श्यामाकाद्वा श्यामाकतण्डुलाद्वैष मे आत्माऽन्तर्हृदये ज्यायान् पृथिव्या ज्यायानन्तरिक्षाज्ज्यायान् दिवो ज्यायानेभ्यो लोकेभ्यः' (छा. ३।१४।३) इत्यादिश्रुतिभिस्तथैव परमात्मस्वरूपस्यावगमादितिभावः। एवंभूत आत्मा सर्वात्मभूतपरमात्मतत्वम् अस्य जन्तोः प्राणिजातस्य दृश्यमानस्य। गुहायाम् हृदये निहितः अन्तर्यामितया प्रविश्य स्थितोऽस्ति। 'अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषोऽन्तरात्मा सदा जानानां हृदये सन्निविष्टः' इति श्रुत्यापि प्राणिजातहृदयसन्निविष्टत्वस्य परमात्मनि बोधनात्। तम् परमात्मानम् आत्मनः जीवस्य महिमानम् महत्त्वप्रापकम् सर्वसत्वादिगुणगणाविर्भावकमित्येतत्। अक्रतुः क्रतुप्रभृतिकर्मफलानभिलाषः विषयोपरतमनीषो यः पश्यति साक्षात्करोति सः धातुः विधरणहेतोः 'एष सेतुः विधरण एषां लोकानामसंभेदाये' तिश्रुत्यनुसारात् सर्वविधारकस्य परमात्मनः। प्रसादात् प्रीतिरूपात् तदनुग्रहात्। वीतशोको भवति वीतः विनष्टः शोकः संसारानलतापो यस्य तथा भवति मुक्तो भवतीत्यर्थः ॥२०॥

इसप्रकार शुद्ध जीव स्वरूप का वर्णन करके जीव का भी आत्मस्वरूप परमात्मा के स्वरूप का वर्णन करने

के लिये कहते हैं-'**अणोरणीयानित्यादि**' अणु अर्थात् सूक्ष्मरूप जो ब्रीहि सर्षपादिक उससे तथा सूक्ष्म जो चेतनजीव उससे भी अणीय अर्थात् अत्यन्त सूक्ष्म अतिसूक्ष्म होने के कारण जीव को भी व्याप्त करने वाला महान् महत्परिमाणतया लोक में प्रसिद्ध जो पृथिवी आकाशादिक पदार्थ उसकी अपेक्षा से भी अतिशयेन महान् महत्तर पृथिवी आकाशादिक को भी व्याप्त करनेवाला। एतादृश कोई भी ऐसा सूक्ष्म वा महत्तर पदार्थ नहीं है जिसे कि यह परमात्मा व्याप्त न करे। 'ब्रीहि से यव से सरसों से सामा और सामतण्डुल से भी यह परमात्मा अतिशयेन अणुतम है यह परमात्मा मेरे हृदय के अन्दर में है, यह पृथिवी से भी बडा है, अन्तरिक्ष से भी बडा है, स्वर्गादिक से भी बडा है, इन तीनों लोकों से भी बडा है' इत्यादि श्रुतियों से एतादृश स्वरूप ही परमात्मा का अवगत ज्ञात होता है। एतादृश आत्मा सर्वात्मभूत परमात्म तत्व इस जन्तु के दृश्यमान प्राणी समुदाय के गुहा हृदय में निहित है अर्थात् अन्तर्यामी रूपसे प्रविष्ट हो करके अवस्थित है। 'अंगुष्ठप्रमाणक पुरुष जो कि सबके अन्तरात्मा है जो कि सर्वदा प्राणियों के हृदय में प्रविष्ट है' इस श्रुति से भी प्राणी समुदाय के हृदय में परमात्मा सन्निविष्ट है, ऐसा

कहा गया है । एतादृश परमात्मा को जो कि आत्मा अर्थात् जीव के महत्त्व का प्रापक है जीव में सत्वादि सकलगुणगण का आविर्भावक है तादृश परमात्मा को । '**अक्रतु**'-कर्मफल की इच्छा नहीं रखनेवाला विषय से उपरत जो व्यक्ति देखता है साक्षात्कार करता है वह धाता विधरण के कारण 'यह परमात्मा सेतु विधारक है इन सब लोकों के असांकर्य के लिये' इस श्रुति के अनुसार सर्वविधारक परमात्मा के प्रसाद प्रीतिरूप परमात्मा के अनुग्रह से वीतशोक हो जाता है । वीत विनष्ट हो गया है शोक संसारानलताप जिसका एतादृश हो जाता है अर्थात् वह पुरुष जो कि परमात्मा का साक्षात्कार कर चुका है, वह भगवान् श्रीरामजी की कृपा से संसार बन्धन रहित होकर मुक्त हो जाता है ॥२०॥

आसीनो दूरं व्रजति शयानो याति सर्वतः ।
कस्तं मदामदं देवं मदन्यो ज्ञातुमर्हति ॥२१॥

सर्व जीवान्तर्यामी वह परमेश्वर बैठा बैठा ही दूर चला जाता है एवं सोया सोया ही सभी तरफ चलता है प्रसन्नता तथा अप्रसन्नतारूप विरोधि धर्मवाले उस सब जग एवं सब शास्त्र प्रसिद्ध देव-परब्रह्म श्रीरामजी को श्रीरामजी की कृपा प्राप्त मेरे सिवाय दूसरा कौन पूर्णतः जान सकता है ॥२१॥

अणीयस्त्वमहीयस्त्व रूपविरुद्धधर्माश्रयत्वं पूर्व मन्त्रेण प्रदर्श्यानेन मन्त्रेण परानपि परस्परविरुद्धान्

धर्मान् प्रदर्श्यास्य दुरधिमगत्वं सूचयितुमाह आसीन इति । आसीनः उपविष्टोऽपि दूरं व्रजति दूरतरप्रदेशं गच्छति लोके तु न क्वचिदपि आसीनः व्रजत्यपि किमुत दूरं व्रजेत् । शयानः शय्यादौ कृतशयनोऽपि सर्वतः याति सर्वत्र गच्छति, नहि शयानस्य गमनमपि संभवि किमुत सर्वत्र गमनमयं तु विरुद्धक्रियाश्रय इतिभावः । मदामदं मदः हर्ष अमदः अहर्षः मदश्चा मदश्च मदामदौ यस्य स्तः स मदामदः अर्श आद्यन्तः । सहर्षमहर्षञ्चेति विरुद्धधर्माश्रयम् । देवं सर्वतो दीव्यमानत्वात् देवः परमात्मा तम् मदन्यः तदनुग्रह विशिष्टमादृशजनादन्यः कः ज्ञातुमर्हति, परस्परनाना धर्माश्रयं परमात्मानं तदीयप्रसादसम्पादितसूक्ष्मबुद्धिः मादृश एव ज्ञातुं प्रभवति नान्य इतिभावः । अनेन तदनुग्रहमन्तरेणास्य दुर्विज्ञेयत्वं प्रदर्शितम् । अत्र परस्परविरुद्धधर्माश्रयत्वन्तु परमात्मनः व्यापकत्वात् जीवद्वारा वा संभवतीत्यनुसंधेयम् ॥२१॥

अतिसूक्ष्मत्व अतिमहत्वरूप परस्पर विरुद्ध धर्माश्रयत्व का पूर्वमन्त्र से प्रदर्शित करके इससे अन्य भी परस्पर विरुद्ध धर्म का प्रदर्शन करके इस आत्मा को दुरधिगमता का सूचन करने के लिये कहते हैं-'**आसीनो दूरमित्यादि**' आसीन बैठा हुआ भी दूरः दूरतरादि प्रदेश

में गमन करता है। यहां स्थितिमत्व तथा दूरगतिमत्व ये परस्पर विरुद्ध धर्म हैं। लोक में देखने में आता है कि बैठा हुआ मनुष्य कहीं नहीं जाता है, दूर गमन तो सर्वथा विरुद्ध है। **'शयना'** इति। सोता हुआ शय्या आदि के ऊपर शयन करता हुआ सर्वत्र जाता है। सोनेवालों का गमन असंभवित है सर्वत्र गमन तो सर्वथा विरुद्ध है शयन सर्वतो गमन सर्वथा विरुद्ध है। **'मदामदमिति'** हर्ष तथा अहर्ष से युक्त। मद का अर्थ होता है हर्ष तथा अमद का अर्थ होता है हर्ष का अभाव मद तथा अमद है जिसे उसे मदामद कहते हैं हर्ष हर्षाभाव रूप विरुद्ध धर्माश्रयता है। सर्वतः प्रकाशशील होने से देव परमात्मा तादृश परमात्मा को मुझ से अन्य अर्थात् परमेश्वरानुग्रह विशिष्ट मुझ से अन्य कौन व्यक्ति है उसे जान सकता है परस्परविरुद्धानेक धर्माश्रय उस परमात्मा को परमेश्वर के अनुग्रह से सम्पादित है सूक्ष्म बुद्धि जिसे एतादृश मुझ सदृश व्यक्ति ही जान सकता है उस परमात्मा को मुझसे अन्य व्यक्ति नहीं जान सकता है। इससे भगवदनुग्रह रहित व्यक्ति से परमात्मा दुर्विज्ञेय है ऐसा सूचित होता है। परमात्मा व्यापक है इसलिये परस्पर विरुद्ध धर्माश्रयत्व होता है अथवा जीव द्वारा तादृश विरुद्ध धर्माश्रयत्व परमात्मा में घटित होता है ॥२१॥

अशरीरं शरीरेष्वनवस्थेष्ववस्थितम् ।
महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न शोचति २२

कर्म से जायमान प्राकृतिक शरीर से रहित (अर्थात् दिव्य शरीरवाले) अस्थिर शरीरों में भी निश्चल रूपसे स्थित विपुल वैभव वाले उस महान् सर्वव्यापक परमात्म श्रीरामतत्त्व को अच्छीतरह से अवगत कर धीर-धैर्यवान् विवेकी साधक शोक नहीं करता है ॥२२॥

एवं मन्त्रद्वयेन प्राप्यस्य परमात्मनः स्वरूपमभिधाय मन्त्रद्वयेन उपायस्य स्वरूपमभिधातुमाह अशरीरमिति । अशरीरं शीर्यते इति शरीरम् वपुः तद्रहितम् विशरणस्वभावस्य कर्मजन्यत्वेन कर्मणः परमात्मन्यभावेन कर्मजन्यशरीरराहित्यमेवात्र विवक्षितम् अप्राकृतनित्यशरीरवत्त्वस्य तत्र 'आदित्यवर्णं तमसः परस्तात् इत्यादिषु श्रवणात् । अनवस्थेषु अवस्था सदातनी स्थिति सा नास्ति येषां तान्यवस्थानि तेष्वविनश्वरेषु शरीरेषु अवस्थितम् अन्तर्यामितया सकलप्राणिशरीरेषु वर्तमानमित्यर्थः । महान्तम् 'महतो महीयानित्युक्तरीत्या' सर्वातिशायिमहत्वविशिष्टम् । विभुम् 'आकाशवत् सर्वगतश्च नित्यः' इत्युक्तरीत्या सर्वव्यापकम् । आत्मानं परमात्मस्वरूपम् मत्वा समुपास्य भक्तिरूपापन्नदर्शनसमानाकारज्ञानविषयं विधाय धीरः एतादृशज्ञानवान् न शोचति शोकसमुद्र पारं गच्छति सर्वदुःखातिगोभवति ॥२२॥

पूर्व वर्णित प्रकार से मन्त्रद्वय द्वारा प्राप्य जो परमात्मा तादृश परमात्म स्वरूप श्रीरामजी का कथन करके दो मन्त्रों से मोक्षोपाय के स्वरूप का कथन करते है **'अशरीरमित्यादि'** अशरीर शरीररहित जो विनष्ट हो उसे शरीर वपु कहते हैं तादृश शरीर रहित है जो विनाश शील पदार्थ होता है वह सब शुभाशुभ कर्मजनित होता है और कर्म का परमात्मा में अभाव होने से **'अशरीरम्'** इससे परमात्मा में कर्मजन्य शरीर के अभाव का प्रदर्शन किया गया है। अप्राकृत नित्य शरीरवत्व का तो 'आदित्य के समान देदीप्यमान तम से पर में अवस्थित' इत्यादि स्थल में प्रतिपादन किया गया है। इसलिए लौकिक शरीर का निराकरण किया गया है न तु नित्य अप्राकृत शरीर का निराकरण है। **'अनवस्थेषु'** अवस्था अर्थात् सर्वकालिक स्थिति वह नहीं है जिसे उसे अनवस्थ कहते हैं तो तादृश विनश्वर शरीर में अवस्थित अर्थात् अन्तर्यामी रूपसे सकल प्राणी के विनश्वर शरीर में सदा वर्तमान परमात्मा को। **'महान्तम्'** **'महतोमहीयान्'** महत् पृथिव्यादिक से भी महान् है। इत्यादि श्रुति कथित प्रकार से सर्वातिशायी महत्व विशिष्ट परमात्मा है। **'विभुमिति'** **'आकाशवत् सर्वगतश्चनित्यः'** इत्यादि श्रुति कथित प्रकार से सर्वव्यापक।

एतादृश परमात्म स्वरूप को मत्वा जान करके अर्थात् पूर्वोक्त गुण विशिष्ट परमात्मा की उपासना करके अर्थात् भक्तिरूप में परिणत दर्शन समानाकारक ज्ञान का विषय बनाकर धीर एतादृश ज्ञानवान् उपासक शोक नहीं करता है अर्थात् दु:ख शोकादिरूप जो महार्णव उसके पार को प्राप्त कर जाता है सर्वदु:ख से अतिक्रान्त हो जाता है ॥२२॥

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन । यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्त स्यैव आत्मा विवृणुते तनूँस्वाम् ॥२३॥

पूर्व वर्णित प्रसिद्ध यह आत्मा–परब्रह्म केवल प्रवचन से प्राप्त नहीं हो सकता है तथा मेधा विशेष बुद्धि या ध्यानादि से भी प्राप्त नहीं हो सकता है एवं अधिक श्रवण से भी प्राप्त नहीं हो सकता है यह परब्रह्म श्रीरामजी तो जिस साधनापरायण व्यक्ति को अपना लेते हैं उसी प्रिय साधक के द्वारा ही प्राप्त किये जाते हैं कारण कि ये परब्रह्म श्रीरामजी उसी साधक के हेतु अपना दिव्यस्वरूप को प्रकाशित करते हैं ॥२३॥

पूर्वमन्त्रे 'मत्वा धीरो न शोचती' त्यत्र मत्वा शब्देन परब्रह्मप्राप्त्युपाय: सामान्यत: प्रदर्शित: । अनेन मन्त्रेण उपायतयाऽन्यत्र प्रसिद्धस्य श्रवणादे: उपायत्वं प्रतिषिध्य भगवद्भक्तेरेव मुख्योपायत्वं प्रतिपादयति नायमात्मेति । **अयमात्मा परब्रह्म प्रवचनेन वेद शास्त्रार्थव्याकरणमात्रेण यद्वा प्रवचनेन प्रवचनसाधन भूतेन मननेन केवलेन न लभ्य: प्रवचनस्य तत्साध**

नेभ्यो लक्षणत्वादि न लभ्यः न साक्षात्करणीयः । मेधया केवलया प्रज्ञया निदिध्यासनरूपया वा न लभ्यः । बहुना भूयसा केवलेन श्रवणेन वेदार्थ विचारणयापि न लभ्यः कुत इति शंकायामाह-एष आत्मा यमेव साधकं वृणुते प्रार्थयते तेन वरणीयेन साधकेन लभ्यः साक्षात्कार्यो भवति यतः तस्य वरणीयसाधकस्यैव कृते एष आत्मा परमात्मा स्वाम् तनूम् स्वकीयदिव्यमङ्गलविग्रहं विवृणुते प्रकाशयति साक्षात्कारयोग्यं कुरुते इति यावत् । स एव परमात्मनः वरणीयो भवति यस्तस्य प्रियतमो भवति यस्मिन् स परमेश्वरः प्रसीदतीति यावत् । परमात्म प्रसादश्च परमात्मनि निरतिशयप्रीतिरूपभक्तिमत्येव साधकेभवति । तथा च 'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्' इत्युक्त्यनुसारेण निरतिशय भक्तिमन्तं साधकं परमात्माऽपि तथैव भजते ततः तदनुग्रहवशात् परमात्मानं साक्षात्कृत्य मुक्तो भवति अतः भगवद्विद्यया निर्मला भक्तिरेव मुख्यः उपायः तत्साक्षात्काराय प्रभवति ततश्च मुक्तिरिति निरवद्यम् ॥२३॥

इससे पूर्व मन्त्र में **'मत्वाधीरो न शोचति'** (पर मात्मा की उपासना करके उपासक शोक समुद्र को अति

क्रमण कर जाता है) इस मन्त्र में मत्वा शब्द से परब्रह्म श्रीरामजी की प्राप्ति के उपाय का सामान्य रूपसे प्रतिपादन किया गया है। अब इस मन्त्र से भगवत् प्राप्ति में उपाय रूपसे अन्यत्र प्रसिद्ध श्रवण मनन से मोक्ष प्राप्ति में उपायता का प्रतिषेध करके भगवान् श्रीरामजी की भक्ति को ही मोक्ष के प्रति मुख्य उपाय है इस बात का प्रतिपादन करने के लिये कहते हैं- '**नायमात्मा**' इत्यादि। यह आत्मा परब्रह्म प्रवचन से वेदशास्त्र के अर्थ के कथन मात्र से। यद्वा प्रवचन से अर्थात् प्रवचन का कारणरूप केवल मनन से वह परमात्मा लभ्य साक्षात्करणीय नहीं है। तथा मेधा केवल प्रज्ञा निदिध्यासनरूप प्रज्ञा से लब्ध एवं अत्यधिक केवल श्रवण से वेदार्थ के विचार मात्र से वह परमात्मा लाभ होने के योग्य नहीं हैं। यह परमात्मा क्यों नहीं श्रवणादि से लभ्य है इस जिज्ञासा के उत्तर में कहते हैं- '**यमेवैष**' इत्यादि। जिस साधक विशेष को यह परमात्मा इच्छित करता है उस वरणीय साधक से वह परमात्मा लभ्य साक्षात् क्रियमाण होता है। जिसलिये उस वरणीय साधक के लिये ही यह परमात्मा श्रीराम स्वकीय तनु दिव्य मङ्गलविग्रह को प्रकाशित करता है अर्थात् साक्षात्कार योग्य बनाता है। वही साधक

परमात्मा से वरणीय होता है जो साधक परमात्मा का प्रिय होता है अर्थात् जिस साधक के ऊपर में परमात्मा प्रसन्न होते हैं। परमात्मा का प्रसाद उसी साधक में होता है जिसमें परमात्मविषयक निरतिशय प्रीतिरूप भक्ति होती है, निरतिशय प्रीतिमान साधक में भगवत् प्रसाद होता है। तथा च 'जो जिस प्रकार से मेरी प्रपत्ति में आता है उसे मैं उसी प्रकार से देखता हूँ' इसप्रकार भगवत् कथनानुसार से निरतिशय भक्तिमान साधक के ऊपर परमात्मा अनुग्रह करते हैं। तब उसके वाद भगवदनुग्रह बल से परमात्मा का साक्षात्कार करके मुक्त होता है वह साधक अतः भगवद् विद्या से निर्मला भक्ति होती है और तादृश भक्ति ही मुख्य उपाय है साक्षात्कार का तदनन्तर मोक्ष होता है ॥२३॥

नाविरतो दुश्चरितात् नाशान्तो नासमाहितः।
नाऽशान्तमानसो वाऽपि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात् २४

वेद एवं लोकप्रसिद्ध परब्रह्म को जो दुश्चरित्रों से रहित नहीं है वह प्राप्त नहीं कर सकता है एवं जो शान्ति रहित है वह भी परब्रह्म को प्राप्त नहीं कर सकता है तथा असमाहित यानी विक्षिप्त मनवाला भी परपुरुष श्रीरामजी को प्राप्त नहीं कर सकता है और अशान्त मनवाला भी ब्रह्म को प्राप्त नहीं कर सकता है तब इस परब्रह्म श्रीरामजी को दुश्चरित रहितत्व आदि प्रज्ञान-विशिष्ट साधना से प्राप्त करे ॥२४॥

एवं भक्तिरूपमापन्नस्य निदिध्यासनध्यानाद्यपर-पर्यायस्य ज्ञानस्य परमात्मप्रसादसम्पादनद्वारा साक्षात्कारोपायत्वमभिधाय तत्र विघ्नभूतान् कतिचित् धर्मानुपदिशति तत्परिहाणाय नाविरत इति दुश्चरितात् श्रुतिस्मृतिप्रतिषिद्धात् परद्रव्यपरस्त्रीहरणप्राणिहिंसनादिरूपात् पापकर्मणः अविरतः अनिवृत्तः प्रज्ञानेन भक्तिरूपापन्नज्ञानेन । एवं परमात्मानं नाप्नुयात् न लभते । तथा अशान्तः इन्द्रियलौल्यात् ग्राम्यभोगपरिष्वत्वात् ततोऽनुपरतो यः सोऽपि प्रज्ञानेनैनं नाप्नुयादिति सम्बन्धः । असमाहितः समाधिविशिष्टः समाहितः समाधिश्च मनस एकाग्रता तद्विशिष्टो नास्ति स भवति विक्षिप्तचेताः चेतसश्चविक्षेपः नानाविधव्यापारप्रवणता एवं भूतोऽसमापितोऽपि नैनमाप्नुयादित्यन्वयः । शान्तम् कामक्रोधादिरहितं मनोयस्य तद्भिन्नोऽशान्तमानसः, स समाहितोऽपि समाधिफलकामो भवति, तद्ध्यानादौ क्रोधादिपरिगतश्च भवति कामादिव्यग्रचेताः यः सोऽपि प्रज्ञानेनैनं न प्राप्तुं शक्नोति, तस्मात् दुश्चरितविरतत्वादिरूपप्रज्ञानाङ्गानुष्ठानपरस्यैव प्रज्ञानं सिद्ध्यति, सिद्धे च तस्मिन् प्रज्ञानेन तेन साधकः परमात्मानमाप्नोति नान्यथेतिभावः ।२४।

इसप्रकार भक्तिरूपता प्राप्त किया हुआ निदिध्यासन

ध्यानादिक है पर्याय ज्ञान का परमात्मा के प्रसाद सम्पादन द्वारा साक्षात्कारोपायता का कथन करके उसमें विघ्नभूत कतिचित् धर्म का प्रदर्शन करते हैं-उसका परित्याग करने के लिये-'**नाविरत**' इत्यादि। दुश्चरित श्रुति स्मृति द्वारा प्रतिषिद्ध परद्रव्य परस्त्रीहरण प्राणीहिंसनादिरूप पापकर्म से जो व्यक्ति अविरत निवृत्त नहीं है वह प्रज्ञान भक्तिरूपापन्न ज्ञान से इस परमात्मा को प्राप्त नहीं कर सकता है, तथा जो अशान्त है इन्द्रिय लोलुपता से ग्राम्य भोग से निवृत्त नहीं है वह भी प्रज्ञान से इस परमात्मा को प्राप्त नहीं कर सकता है। तथा-'**अशान्त**' इति। इन्द्रिय की लोलुपता से बाह्य ग्राम्य भोग में आसक्त रहने से बाह्य भोगोपरक्त पुरुष भी केवल प्रज्ञान से इस परमात्मा को नहीं प्राप्त करता है। '**असमाहित**' इति। समाधिविशिष्ट को समाहित कहते हैं। और समाधि कहते हैं मन की एकाग्रता को एतादृश एकाग्रता विशिष्ट जो नहीं है वह है विक्षिप्त चित्तवाला। चित्त का विक्षेप है अनेक प्रकारक व्यापारोन्मुखता। एतादृश असमाहित जो व्यक्ति वह इस आत्मा को नहीं प्राप्त करता है। '**नाशान्तमानस**' इति। शान्त कामक्रोधादि से रहित है मन जिसका उसे शान्त मानस कहते हैं और इससे भिन्न जो उसे अशान्त मानस कहते हैं। एतादृश

व्यक्ति समाहित भी हो समाधिफल के कामनावान् होता है। तत् ध्यानादिक में क्रोधादिक से युक्त भी होता है, वह कामादिक से व्यग्रचित्त वाला पुरुष प्रज्ञान से आत्मा को प्राप्त नहीं करता है। इसलिये दुश्चरित विरतत्वादिरूप प्रज्ञान के अनुष्ठान में तत्पर व्यक्ति को ही प्रज्ञान सिद्ध होता है। और प्रज्ञान के सिद्ध होने पर उस प्रज्ञान से वह साधक परमात्मा श्रीरामजी को प्राप्त करता है अन्यथा नहीं प्राप्त कर सकता है ॥२४॥

यस्य ब्रह्म च क्षत्रञ्च उभे भवत ओदनः।
मृत्युर्यस्योपसेचनं क इत्था वेद यत्र सः ।२५।

जिन तीनों काल से पर सर्वेश्वर श्रीरामजी के ब्रह्म-धर्म तथा अधर्म के निरूपक ब्राह्मण एवं क्षत्र-धर्म पालक क्षत्रिय दोनों ही भात बनते हैं तथा मृत्यु-सब जग नाशक यमदेव जिसके उपसेचन-भात के खाया जानेवाली चटनी के रूपमें है ऐसे सभी के ऊपर नियन्त्रण करनेवाले परपुरुष श्रीरामजी कहां किसप्रकार स्थित हैं ऐसा पूर्णतया कौन जान पाता है ॥२५॥

ब्रह्म ब्राह्मणः क्षत्रं च क्षत्रियश्च उभे इमे द्वे अपि यस्य परमात्मनः ओदनः भवत अशनम् संह्रियमाणत्वादुपचारः ओदनत्वस्येतिभावः भवतः याताम्। अत्र ब्रह्मक्षत्रपदयोः निखिलचराचरप्रपञ्चस्योपलक्षणत्वात् सर्वमेव जगत् यस्य ओदनशब्दितमुपसंहार्य भवतीत्यर्थः। संहारकारणया प्रसिद्धो मृत्युरपि यस्य

परमात्मनः उपसेचनम् अद्यमानौदनादीनामदने सहायकं दध्यादि उपसेचनमाख्यायते दध्याद्युपसिक्तस्यौदनादेः सरलतयाऽदनयोग्यताभवनात् तथैव चराचरप्रपञ्चोपसंहारे सहायको मृत्युरुपसेचनमित्युच्यते, यथा चोपसेचनं दध्यादिस्वयमपि ओदनस्य अत्रा अद्यते तथा मृत्युरपि सहायको भवन् प्रपञ्चोपसंहारे परमात्मनः स्वयमपि तेन संह्रियते मृत्युसहितः समस्तः प्रपञ्चो यस्य संहार्यो भवतीतिभावः । स सर्वसंहारकर्ता परमात्मा यत्र स्वे महिम्नि प्रकारे वा अवस्थितः तं महिमानं प्रकारं वा । इत्था इत्थमिति को वेद न कोऽपीत्यर्थः । स यादृशमहिमविशिष्टः यत्प्रकारविशिष्टो वा स महिमा प्रकारो वा तस्य न केनाऽपि वेत्तुं शक्यते, तेनायं परमात्मा अपरिच्छिन्नमहिमा अचिन्त्यप्रकारो वेतिभावः ॥२५॥

卐 इतिकाठकोपनिषदि आनन्दभाष्ये प्रथमाध्यायस्य
द्वितीया वल्ली ॥२॥ 卐

'**यस्य ब्रह्म च**' इत्यादि । जिस परमात्मा के लिये ब्रह्म ब्राह्मण जाति एवं क्षत्र क्षत्रिय जाति ये दोनों ओदन स्थानीय हैं ये सब पदार्थ संह्रियमाण होने से इनमें ओदनत्व का उपचार होता है । यहां ब्रह्म तथा क्षत्रिय पद सकल चराचर प्रपञ्च का उपलक्षण है, इसलिये

सम्पूर्ण जगत् जिसके लिये ओदन पद बोध्य उपसंह्रियमाण होता है ऐसा अर्थ होता है । संहार कारणरूप से प्रसिद्ध जो मृत्यु यमराज जिस परमात्मा का उपसेचन अर्थात् अद्य मान ओदनादिक के भक्षण करने में सहायक दध्यादिक उपसेचन कहलाता है । दही चटनी प्रभृतिक उपसेचनीय द्रव्य से युक्त ओदनादिक सरलरूप से भुज्यमान होता है। इसीप्रकार से चराचर प्रपञ्च के उपसंहार में मृत्यु सहायक होता हुआ उपसेचन कहलाता है । जिस तरह उपसेचन दही चटनी प्रभृतिक पदार्थ ओदन खानेवाले व्यक्ति से खाया जाता है, उसी तरह यमराज भी चराचर के उपसंहार में सहायक होता हुआ स्वयमपि परमात्मा से भक्षित होता है । मृत्यु सहित समस्त प्रपञ्च जिससे-उपसंह्रियमाण होता है । वह सबका संहार करनेवाला परमात्मा श्रीराम जिस स्वकीय महिमा में अवस्थित है उस महिमा को इसप्रकार से कौन जान सकता है अर्थात् कोई भी नहीं जान सकता है । वह परमात्मा यादृश महिमा से विशिष्ट है उस महिमा को अथवा उसप्रकार को कोई नहीं समझ सकता है । इसलिये यह परमात्मा सर्वेश्वर श्रीरामजी अपरिच्छिन्न महिमा वा प्रकारवाले हैं ॥२५॥

❀ इति आनन्दभाष्यप्रकाशे प्रथमाध्यायस्य द्वितीया वल्ली ❀

卐 अथ प्रथमाध्याये तृतीया वल्ली 卐

ऋतंपिबन्तौ सुकृतस्य लोके गुहां प्रविष्टौ परमे परार्ध्ये ।छायातपौ ब्रह्मविदो वदन्ति पञ्चाग्नयो ये च त्रिणाचिकेताः ॥१॥

स्वयं संपादित सुकृत कर्मों के परिणामरूप मानव देह में सर्वोत्तम परब्रह्म के आवासभूमि हृदयस्वरूप गुफा में प्रविष्ट जीवात्मा तथा परमात्मा सत्यस्वरूप कर्मफल को भोगते हुये छाया-अल्पज्ञ जीव छाया के जैसा तथा आतप-सर्वज्ञ परब्रह्म कर्मफल भोगरहित प्रकाश के स्वरूप में अवस्थित हैं ऐसा ब्रह्म को जानने वाले साधक एवं जो तीन वखत नचिकेता अग्नि का चयन करने वाले हैं और दक्षिणाग्नि गार्हपत्याग्नि आहवनियाग्नि आवसथ्याग्नि तथा सम्परागिन इन पाँच अग्नि के साधक हैं ये सब कहते हैं ॥१॥

पूर्वमन्त्रे यादृशमहिमविशिष्टः, प्रकारविशिष्टो वा परमात्मा तादृशं परमात्मानं न कोऽपि वेत्तुमर्हतीत्युक्तम् तेन कश्चिन्मुमुक्षुः नैरास्यं न यातु इत्येतदर्थमिन्द्रियजयादिनिमित्तकपरमपुरुषप्रसादतः वेत्तुमर्हतीति वक्तुं वेद्यवेदकयोरेकशरीरवर्तित्वं प्रथमतः उपपादयति ऋतमिति । ऋतम् कर्मफलम् अवश्यम्भावित्वात्कर्मफलस्य सत्यपर्यायकऋतशब्देनोक्तिः । पिबन्तौ भुञ्जानौ कर्मफलमनुभवन्तौ इति समुदितार्थः । यद्यपि कर्मफलानुभोक्तृत्वम् कर्मवश्यस्य जीवस्यैव न

परमात्मनोऽतो द्विवचननिर्देशोऽसंगत इवाभाति तथापि लीलारसमनुभवितुं परमात्माऽपि तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्रा विशदितिश्रुत्यनुसारेण शरीरं प्रविशतीत्यवगतेः तस्या पि स्वसंकल्पात्मककर्मफलानुभवितृत्वमस्त्येव । यदा यथा छत्रिणो यान्तीति व्यवहारः एकस्य छत्रित्वेऽन्येषा मछत्रित्वेऽपि भवति तथा एकस्मिन्नेव फलानुभवितरि परस्मिंश्चान्तर्यामितया वर्तमानेऽपि पिबन्तौ इति द्विव चननिर्देशः संगच्छते इतिभावः । सुकृतस्य लोके, सुकृतं कर्म तस्य सम्बन्धिनि लोके शरीरे इति जीव पक्षे, परमात्मपक्षे तु सुकृतम् स्वसंकल्परूपम् तत्सं बन्धिनि लोके मनुष्यशरीरे इत्यर्थः । सुकृतशरीरयोः सम्बन्धश्च साध्यसाधकभावरूपः तेन सुकृतसाध्ये शरीरे इति पर्यवस्यति । गुहां प्रविष्टौ तत्र शरीरे या गुहा हृदयकुहरम् तत्र प्रविष्टौ तदन्तर्गतौ तत्रापि परमे परार्ध्ये परार्धमर्हतीति परार्ध्यम् परार्धञ्च चरमोऽवधिः संख्यायाः स चावधिः यथा संख्यासु भवत्युत्कृष्टः तथा हृदयकुहरवर्त्याकाशस्याप्युत्कृष्टत्वख्यापनाय प-रार्धशब्देन कथनमतः परार्ध्ये उत्कृष्टे हार्दाकाशे इत्यर्थः । तत्रापि परमे इति विशेषणेन अत्यन्तमुत्कृष्टत्वं बोध्यते तत्र हेतुः परमात्मनः उपलब्धिस्थानत्वमेवास्य हार्दाकाशस्येति । वर्तमानौ इति पदमाक्षिप्य योजनी

यम् । ततः सुकृतसाध्यमानुषशरीरगतहृदयाकाशे वर्तमानौ जीवपरमात्मानौ स्तः इति उपास्यस्याति-सन्निहितत्वमुपासासौलभ्ये निमित्तमुक्तं भवति । छायाऽऽतपौ छायाशब्देनाल्पज्ञो जीवः लक्ष्यते संसारित्वेन छायासमत्वात् आतपशब्देन च सर्वज्ञः परमात्मा असंसारित्वे नातपतुल्यत्वात् तत्र वर्तमानौ जीवपरमात्मानौ एव प्राप्यप्रापकौ इत्यर्थः । अत्रार्थे सम्वादमुपदर्शयति ब्रह्मविदो वदन्ति कृतब्रह्मसाक्षात्काराः ये ते वदन्ति हार्दाकाशवर्तित्वमनयोरित्यर्थः । पञ्चाग्नयो ये च तृणाचिकेताः त्रिं चितः नाचिकेतोग्निर्यैस्ते त्रिणाचिकेताः एवं भूता ये पञ्चाग्नयः गार्हपत्याग्निः दाक्षिणाग्निः आहवनीयाग्निः साम्पराग्नि आवसथ्याग्निः एते पञ्चाग्नयो येषां सन्ति ते पञ्चाग्नेयः एतत्पञ्चाग्नि परिचर्यापरायणा अपि अन्तःकरणशुद्धिद्वारा हार्दा-काशवर्तित्वमनयोर्जानन्ति अतो वदन्तीत्यर्थः ॥१॥

इससे पूर्वमन्त्र में यादृश महिमा से युक्त परमात्मा अथवा यादृश प्रकार से विशिष्ट परमात्मा श्रीरामजी हैं तादृश माहात्म्यादि विशिष्ट परमात्मा को कोई नहीं समझ सकता है ऐसा कहा है, तब तो अज्ञेय परमात्मा को जानकर कोई कोई मुमुक्षु निराशा प्राप्त न करजाय इसलिये इन्द्रिय जयादि निमित्तक परमात्मा को जान

सकता है, इस बात को कहने के लिये वेद्य परमात्मा तथा वेदक ज्ञाता जीव ये दोनों एक शरीररूप एक अधिष्ठान में रहते हैं इस वस्तु का प्रथमत: उपपादन करने के लिये प्रक्रम करते हैं-'**ऋतंपिबन्तावित्यादि**' ऋत कर्मफल को, कर्म का फल कभी भी व्यभिचरित नहीं होता है किन्तु अवश्यंभावी है-'**नाभुक्तं क्षीयते कर्मकल्पकोटिशतैरपि**' इत्यादिप्रमाण से सिद्ध होता है। इसलिये सत्य पर्याय वाची ऋत शब्द से तादृश कर्मफल का कथन किया गया है। '**पिबन्तौ**' भोग करता हुआ अर्थात् पुण्यपापरूप कर्म के फल का अनुभव करते हैं यह '**ऋतं पिबन्तौ**' इस समुदित का अर्थ है। यद्यपि कर्मफल का अनुभव कर्तृत्व कर्मपराधीन जीव में ही है किन्तु परमात्मा में कर्मफल भोक्तृत्व नहीं है तब द्विवचन का प्रयोग असंगतप्राय ज्ञात होता है। तथापि लीलारस का अनुभव करने के लिये परमात्मा भी-'उसका निर्माण करके उसमें अनुप्रविष्ट हो गये' इस श्रुति के अनुसार शरीर में प्रवेश करते हैं, अत: परमेश्वर को भी स्वकीय संकल्पात्मक कर्मफल का अनुभवकर्तृत्व तो है। अथवा जिस तरह '**छत्रिणोयान्ति**' छातावाले जाते हैं यह व्यवहार एक दो छातावाले के होने पर अन्य कोई के छातावाला नहीं होने पर भी समुदायाभिप्राय से प्रयोग

होता है, इसी तरह एक जीव में फलानुभव कर्तृत्व है परमात्मा में फलानुभव कर्तृत्व नहीं होने पर भी किन्तु अन्तर्यामी रूपसे वर्तमान परमात्मा में भी **'पिबन्तौ'** इस तरह से प्रयोग संगत होता है। **'सुकृतस्य लोके'** सुकृत अर्थात् शुभाशुभ कर्म तादृश कर्म सम्बन्धी लोक शरीर में, यह अर्थ हुआ जीव पक्ष में। और परमात्म पक्ष में सुकृत का अर्थ है स्वकीय संकल्परूप तत्सम्बन्धी लोक मनुष्य का शरीर तादृश मनुष्यादि शरीर में। सुकृत कर्म तथा शरीर का सम्बन्ध क्या है तो साध्य साधकभावरूप है इसलिये यह अर्थ होता है कि कर्म साध्य कर्मजन्य शरीर में **'गुहां प्रविष्टौ'** गुहा में प्रविष्ट वे दोनों उसमें शरीर में जो गुहा हृदयाकाशरूप तादृश गुहा में प्रविष्ट तदन्तर्गत **'परमेपरार्ध्ये'** परार्धयोग्य जो उसे परार्ध्य कहते हैं अर्थात् परार्ध्य संख्या का चरम अबधि को कहते हैं, वह अवधि जैसे संख्याओं में सर्वश्रेष्ठ है उसी तरह हृदय गुहावर्ती आकाश में भी उत्कृष्टत्व का ख्यापन करने के लिये परार्ध्य शब्द से कथन किया गया है, अतः परार्ध्य में अत्युत्कृष्ट हृदयाकाश में यह अर्थ होता है। उसमें भी **'परमे'** यह जो विशेषण है वह अत्यन्त उत्कृष्टत्व को बतलाता है। यह हृदयाकाश अत्यन्त उत्कृष्ट इसलिये है कि यह परमात्मा की उपलब्धि का

स्थान है । यहां-'**वर्तमानौ**' इसका आक्षेप करके योजन करें । तब यह अर्थ फलित होता है कि सुकृत कर्मसाध्य मनुष्य शरीरगत जो हृदयाकाश तादृशाकाश में वर्तमान जीव तथा परमात्मा हैं अतः उपास्य के अत्यन्त सामीप्य उपासना की सुलभता में निमित्त कहा गया है । '**छायातपौ**' यहां छाया शब्द से अल्पज्ञ जीव लक्षित होता है क्योंकि संसारी होने से जीव छाया के समान है। और आतप शब्द से सर्वज्ञ सर्वनियन्ता का ग्रहण होता है क्योंकि असंसारी होने से परमात्मा आतप के समान देदीप्यमान है । उस मनुष्य हृदयाकाशरूप गुहा में वर्तमान जीव तथा परमात्मा ही प्राप्य प्रापक हैं । इस विषय में संवाद को बतलाते हैं-'**ब्रह्मविदोवदन्तीति**' ब्रह्मज्ञानी अर्थात् जिन्होंने ब्रह्म का साक्षात्कार करलिया है, वे लोग कहते हैं कि जीव तथा परमात्मा हृदया काशरूप गुहा में विद्यमान हैं । '**पञ्चाग्नय**' इत्यादि । तीन वार चयन किया है नाचिकेत अग्नि को जिसने उसे त्रिणाचिकेत कहते हैं एवंभूत जो पञ्चाग्नि उपासक गार्हपत्य अग्नि, दाक्षिणाग्नि, आहवनीयाग्नि सांपराग्नि, आवसथ्याग्नि ये पांच अग्नि हैं जिन्हें उन्हें पञ्चाग्नेय कहते हैं । एतादृश पञ्चाग्नि की परिचर्या में परायण व्यक्ति भी अन्तःकरण की पवित्रता के द्वारा इन जीव

परमात्मा को हृदयाकाश स्थित जानते हैं ॥१॥

यः सेतुरीजानानामक्षरं ब्रह्म यत्परम् ।
अभयं तितीर्षतां पारं नाचिकेतं शकेमहि ॥२॥

जो परब्रह्म याग कर्म वालों के हेतु सेतु-प्रधान कर्म फल का प्रदाता है एवं जो विकार रहित परब्रह्म है वह संसार सागर को तर जाने की आकांक्षा वाले के लिये भयरहित सुदृढ किनारा है । नचिकेता संबन्धी साधना से प्राप्य परब्रह्म श्रीरामजी की उपासना हेतु हम सक्षम हैं ॥२॥

यः यत्परं ब्रह्म ईजानानाम् परमपुरुषोद्देशेन देवतान्तरोद्देशेन वा ये यागादिकर्माचरन्ति तेषां यज्वनाम् सेतुः सेतुर्यथा पारं लम्भयति तथैव परं ब्रह्मापि सर्वान्तर्वर्तितया याज्ञिकान् कर्मफलं लम्भयति अतः सेतुत्वेन रूपितम् यत् शब्दे पुल्लिंगता तु सर्वनाम्नामुद्देशप्रतिनिर्देश्यरत्ययोन्यतरलिंगभावत्त्वात् श्रौतत्वाद्वा बोध्या । यत् अक्षरं क्षरणशून्यम् विकाररहितमिति यावत् परं ब्रह्म श्रीरामाख्यम् । अभयम् एतत् पारमित्यस्य विशेषणम् भयरहितम् सुदृढमिति यावत् । तितीर्षताम् संसाराकूपारं तर्तुमिच्छताम् पारं तीरम् । एवभूतं नाचिकेतम् नाचिकेताग्निविद्यासेवया साक्षात्कारद्वारा प्राप्यम् पूर्वोक्तं परंब्रह्म शकेमहि समुपासितुम् ज्ञातुं प्राप्तुं च वयं समर्था एव भवेमेत्यर्थः । अतः

क इत्था वेद यत्र सः इत्युक्तरीत्या दुरुपास्यत्व दुर्ज्ञेयत्व दुष्प्राप्यत्वबुद्ध्या न हताशैर्भवितव्यमस्माभिरिति भावः ॥२॥

'**यः सेतुरित्यादि**' जो परब्रह्म ईजानों का परमपुरुष परमात्मा को उद्देश्य करके अथवा अन्य किसी देवता को उद्देश्य करके यागादिक कर्म का जो आचरण संपादन करते हैं उसे **ईजान** कहते हैं अर्थात् यज्ञ कर्ता पुरुष के जो ब्रह्म सेतु पूल हैं। जिस तरह सेतु-पूल पार को प्राप्त कराता है उसी तरह परब्रह्म भी सर्वान्तर्यामी होकर याज्ञिक पुरुष को कर्मफल प्रापक होते हैं इसलिये परब्रह्म को सेतु का सादृश्य दिया है। **यः** यहां यत् शब्द में जो पुल्लिंग का निर्देश है वह सर्वनामवाची शब्द विशेष्य निघ्न होता है इसलिये है। अथवा श्रौत होने से पुल्लिंग निर्देश है। जो अक्षर सर्वविकार रहित श्रीराम नामक परंब्रह्म हैं वह अभय सर्वप्रकारक भय विवर्जित सुदृढ हैं। यह अभय पद पार का विशेषण है। संसार सागर को पार करने की इच्छावान् पुरुषों के पार तीररूप है। एतादृश नाचिकेत अर्थात् नाचिकेत अग्नि की सेवा से साक्षात्कार द्वारा प्राप्त होने के योग्य पूर्वोक्त ब्रह्म को उपासना द्वारा जानने में प्राप्त करने में हम समर्थ है। अतः '**क इत्था वेद**

यत्र सः' इत्यादि क्रम से ब्रह्म के दुरूपास्यत्व दुष्प्राप्यत्व एवं दुर्ज्ञेयत्व होने से उसके लिये हताश उपासक को नहीं होना चाहिये ॥२॥

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु ।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च ।३।

हे नचिकेता ! तुम जीवात्मा को रथी-रथ का सवार समझो एवं शरीर को तुम रथ समझलो तथा बुद्धि को तुम सारथि-रथ हांकनेवाला समझो और मन को प्रग्रह-रस्सी-लगाम जान लो ॥३॥

इमं मन्त्रमारभ्य 'दुर्गं पथस्तत्कवयोवदन्ती' त्यन्तैः मन्त्रैः रथित्वादिरूपककल्पनापुरस्सरमुपासनाप्रकारं प्रदर्शयति आत्मानमिति यथा रथः रथस्थपुरुषस्य ग्रामान्तरगमनाय प्रधानसाधनमेवं भोगाऽपवर्गप्रापणाय जीवस्य प्रधानं साधनं शरीरमेव अतः शरीरं रथत्वेनरूप्यते । शरीरं रथं विद्धि तत्र वर्तमानः आत्मा कर्मवश्यः संसारी तम् रथिनम् रथस्वामिनम् शरीररूपरथस्य स्वकर्मभिरुपार्जकत्वात् विद्धि जानीहि। बुद्धिं सारथिं विद्धि । बुद्धिरत्राध्यवसायरूपा, कर्तव्यमध्यवस्यति पूर्वं ततः प्रवर्तते तस्मात् बुद्धिरेव सारथिः । इन्द्रियाश्वेप्रवर्तकत्वस्य मनोद्वारा बुद्धावेव मुख्यत्वात् । अतो बुद्धिशब्दितमध्यवसायं सारथित्वे नावगच्छेदित्यर्थः । मनः प्रग्रहो रशना, रशनावबद्धस्यै

वाश्वस्य नियन्त्रणं सारथिना शक्यक्रियं भवति । तथा मनः संयुक्तामेवाश्वत्वेननयितामिन्द्रियाणामध्यवसायेन नियन्त्रणं साध्यसंभवमिति मनःप्रग्रहत्वेन रूपितमिति मनः प्रग्रहं विद्धीतिभावः ॥३॥

इस मन्त्र से आरम्भ करके '**दुर्गंपथस्तत्कवयो वदन्ति**' एतदन्त मन्त्रों से रथ रथित्वरूप कल्पनापूर्वक उपासना के प्रकार को बतलाने के लिये कहते हैं- '**आत्मानं रथिनमित्यादि**' जिस तरह रथ गाडी रथ में बैठने वाले पुरुष को एक ग्राम से ग्रामान्तर जाने के लिये प्रधान साधन है इसी तरह भोग लौकिक तथा पारलौकिक और अपवर्ग मोक्ष को प्राप्त कराने के लिये जीव का प्रधान साधन यह भोगाधिष्ठान शरीर ही है । इसलिये शरीर को रथ का सादृश्य कहते हैं । शरीर को रथ स्थानापन्न समझो । उस शरीर में वर्तमान जीवात्मा कर्मपराधीन संसारी उसे रथी, रथ का मालिक जानो क्योंकि उसने स्वकीय कर्म द्वारा उस शरीररूप रथ का अर्जन किया है, एतादृश जीव को रथी समझो । बुद्धि को सारथी समझो, यह अध्यवसायरूपा बुद्धि है । प्रथमतः कर्तव्य कार्य का मनसा निश्चय करता है, उसके वाद कार्य करने के लिये प्रवृत्त होता है । इसलिये बुद्धि ही सारथी रथ वाहक है । मुख्यरूप से मनके द्वारा

इन्द्रियरूप अश्व की प्रवर्तकता बुद्धि में ही है। इसलिये बुद्धिपद बोध्य अध्यवसाय को सारथीरूप से जानो। मन प्रग्रह रशना लगाम है, लगाम से जोडा हुआ अश्व का नियन्त्रण सारथी से होता है। मन से संयुक्त अश्वरूप से नियत इन्द्रियों का बुद्धि द्वारा नियन्त्रण संभवित है अतः मन को रशना से उपमित किया गया है। इसलिये मन को प्रग्रह लगाम समझना चाहिये ॥३॥

इन्द्रियाणि हयानाहुः विषयांस्तेषु गोचरान् ।
आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः ॥४॥

ज्ञान वाले मानव इन्द्रियों को घोडे कहते हैं तथा उन इन्द्रियों में शब्द प्रभृति विषयों को घोडों के आवागमन का रास्ता कहते हैं और इन्द्रिय शरीर मन और बुद्धि के साथ जो रहता है उसे जीवात्मा ऐसा कहते हैं ॥४॥

हयैर्गतिमद्भिरन्यत्र रथं नयति सारथिः तथैव चक्षुरादीन्द्रियैः स्वस्वव्यापारपरैरेव करणै रिदं शरीरं देशान्तरे भोगायापवर्गाय वाध्यवसायो नेतुमर्हति तस्मादिन्द्रियाणि हयत्वेन रूपितानि। इन्द्रियाणि ज्ञानेन्द्रिय कर्मेन्द्रियोभयरूपाणि हयान् आहुः अश्वा इति वदन्तीत्यर्थः। अश्वा हि मार्गमादायैव देशान्तरं नयन्ति रथम्। तथैव विषयमादायैव इन्द्रियाणि प्रवर्तमानानि शरीरं नयन्ति देशान्तरमिति विषयेषु मार्गत्वरूपणम्

तेषु हयत्वेन रूपितेषु इन्द्रियेषु गोचरान् मार्गान् विषयान् शब्दादीन् एव आहुः रूपककल्पनापटवः। शरीरेन्द्रियसंघातसंबन्धे सत्येव भोक्तृत्वमात्मनो भवति नान्यथेत्यत्र मनीषिसंवादं दर्शयति आत्मेन्द्रियमनो-युक्तम् आत्मा अत्र शरीरम् इन्द्रियं ज्ञानकर्मेन्द्रियरूपम् चक्षुरादिवागादि च मनः संकल्पविकल्पकारितया प्रसिद्धमेव। मनः शब्देन चाध्यवसायोऽपि लक्ष्यते अध्यवसायं विना संकल्पमात्रेण प्रवृत्त्यनुपपत्तेः, एतैः शरीरेन्द्रियमनोध्यवसायरूपैः सङ्घातैः युक्तम् सहितमेव आत्मतत्वं भोक्ता इत्याहुः कथयन्ति मनीषिणः विवेकिनोजनाः एतत्संघातयोगरहितस्य केवलस्य आत्मनः ज्ञातृत्वसत्वेऽपि कर्तृत्वं भोक्तृत्वञ्च नैव भवति-इतिभावः ॥४॥

'इन्द्रियाणीत्यादि' विलक्षणगतिमान् अश्व की सहायता से रथ को देशान्तर में सारथी ले जाता है उसी तरह अपने अपने व्यापार में संलग्न चक्षुरादि करण के द्वारा यह शरीररूपी रथ देशान्तर में भोगापवर्ग के लिये यह अध्यवसाय शरीर को ले जाता है। इसलिये इन्द्रिय को अश्वरूप से कथित किया गया है। इन्द्रिय-ज्ञानेन्द्रिय कर्मेन्द्रिय इन दोनों इन्द्रियों को अश्व कहते हैं। सु-शिक्षित अश्व जिस तरह मार्ग की सहायता से ही रथ

को देशान्तर में ले जाता है उसी तरह विषय शब्दादिक को ले करके ही प्रवर्तमान इन्द्रिय समुदाय शरीर को ले जाता है देशान्तर में। इसलिये विषय में मार्ग की उपमा दी गई है तथा इन्द्रिय में हयरूप से उपमित में मार्ग शब्दादिक विषय को रूपक कल्पना में पटुलोग कहते हैं। **'आत्मेन्द्रियमनोयुक्तमिति'** आत्मा इन्द्रिय मनसे युक्त को भोक्ता कहते हैं। यहां आत्मा शब्द का अर्थ है शरीर इन्द्रिय में ज्ञानेन्द्रिय कर्मेन्द्रिय इन दोनों इन्द्रियों का ग्रहण होता है और संकल्प विकल्प करनेवाला प्रसिद्ध मनका ग्रहण होता है। यहां मन शब्द से अध्य वसाय रूप बुद्धि का ग्रहण है क्योंकि अध्यवसाय के बिना संकल्प मात्र से प्रवृत्ति नहीं होती है। इस शरी इन्द्रिय मन अध्यवसायरूप संघात से आत्मतत्व को विद्वान् लोग भोक्ता कहते हैं। एतादृश संघात के सम्बन्ध से रहित केवल आत्मा में यद्यपि ज्ञातृत्व तो है किन्तु कर्तृत्व तथा भोक्तृत्व नहीं है ॥४॥

यस्त्वविज्ञानवान् भवत्ययुक्तेन मनसा सदा।
तस्येन्द्रियाण्यवश्यानि दुष्टाश्वा इव सारथेः ५

जो साधक व्यक्ति सदा वशीकृत मनवाला नहीं होता है यानी चञ्चल मनवाला एवं विवेकरहित बुद्धिवाला होता है उस साधक के इन्द्रियवर्ग अकुशल सारथि के दुष्ट अश्व के समान वश में नहीं होते हैं ॥५॥

यः रथित्वेन रूपितः शरीराधिष्ठाता जीवः । अविज्ञानवान् विज्ञानं यत्र विवेकात्मकोऽध्यवसायस्तदस्यास्तीति विज्ञानवान् तद्भिन्नः अज्ञानवान् विवेकात्मकाध्यवसायरूपसारथिरथिरहितः भवति तथा अयुक्तेन अप्रगृहीतेनमनसा सदायुक्तो भवति मनः प्रग्रहरहितश्च सर्वदा भवति तस्य रथित्वेनरथितस्यात्मनः इन्द्रियाणि अश्वत्वेन रूपितानि अवश्यानि शब्दादिविषयरूपकुमार्गात् नियन्त्रितुमशक्यानि भवन्ति । ईदृशस्यैवात्मनः इन्द्रियाणि विषयाभिमुखानितेष्वाधावन्ति येन संसाराऽकूपारे स पतति । अत्र दृष्टान्तमाह दुष्टाश्वा इव सारथेरिति । दुष्टा अदान्ताः प्रग्रहसारथिरहितस्य अश्वा अनियन्त्रिता एव भवन्ति अतस्ते दुष्टा इत्युच्यन्ते तादृशा अश्वाः लोकप्रसिद्धस्य रथवाहकस्य सारथेरवश्याः यथा भवन्ति तथेत्यर्थः । ततश्चरथस्थो गन्ताः यथा गर्ते पतति तथा अवश्येन्द्रियस्य संसारसमुद्रपातोऽवश्यं भावीतिभावः ॥५॥

'यस्त्वविज्ञानवानित्यादि' जो रथी रूपसे कल्पित शरीर का अधिष्ठाता जीवविशेष । अविज्ञान होता है । विवेकरूप अध्यवसाय को विज्ञान कहते हैं तादृश विज्ञान हो जिसे उसे विज्ञानवान् कहते हैं, उससे जो भिन्न वह अज्ञानवान् विवेकात्मक अध्यवसायरूप सारथी

से रहित होता है, तथा अयुक्त अर्थात् अप्रगीत मनसे सर्वदा युक्त है अर्थात् मनरूप लगाम से सर्वथा रहित होता है। उस सारथी रूपसे कल्पित पुरुष का अश्वरूप से कल्पित जो इन्द्रिय समुदाय वह अपने वश में नहीं रहता है अर्थात् शब्दाद्यात्मक विषयरूप कुमार्ग से नियन्त्रित करने में अशक्य हो जाता है। एतादृश आत्मा का इन्द्रियवर्ग विषयाभिमुख हो जाता है जिससे वह पुरुष संसाररूप महासमुद्र में पतित होता है। इस विषय में दृष्टान्त बतलाते हैं-**'दुष्टाश्वा इवेत्यादि'** दुष्ट अर्थात् अदान्त प्रग्रह लगाम तथा सारथी रहित पुरुष का अश्व घोडा अनियन्त्रित ही होता है इसलिये उस अश्व को दुष्ट अश्व कहते हैं। एतादृश अश्व लोकप्रसिद्ध रथ चालक सारथी का अवश्य जिस तरह होता है उस तरह प्रकृत में। दुष्टाश्वयुक्त रथ पर चलने वाला पुरुष जिस तरह संसारगर्त खड्डे में गिरता है उसी तरह जिसका इन्द्रियरूप अश्व अनियन्त्रित है उसका संसार कूप में पतन अवश्यंभावी है ॥५॥

यस्तु विज्ञानवान् भवति युक्तेन मनसा सदा।
तस्येन्द्रियाणि वश्यानि सदश्वा इव सारथेः ६

पर जो साधक पुरुष वशीकृत मनके साथ विवेकशाली बुद्धिवाला होत. है उस साधक के इन्द्रियवर्ग होशियार सारथि के

अच्छे अश्व के समान वश में होते हैं ॥६॥

यस्तु रथी आत्मा विज्ञानवान् विवेकात्मकाध्यवसायवान् भवति सदा निरन्तरं युक्तेन प्रगृहीतेन समाहितेनेतियावत् मनसा, संकल्पात्मकेन युक्तः सहितः मनोरूपप्रग्रहवान् भवति तस्य ईदृशसारथिप्रग्रहविशिष्टस्यात्मनः रथिनः इन्द्रियाणि वश्यानि वशवर्तीनि भवन्ति अतो येन संसारोदधौ न निमज्जति, अत्र दृष्टान्तं दर्शयति सदश्वा इव सारथेः निपुणमते दृढप्रग्रहवतः सारथेः रथचालकस्य सदश्वाः सन्तः विवेकेन दृढप्रग्रहनियन्त्रित्वेन सत्पथगन्तारः अश्वाः यथा वशे भवन्ति तद्वत् इत्यर्थः ॥६॥

'यस्तुविज्ञानवानित्यादि' जो रथी स्थानापन्न जीवात्मा विज्ञानवान् है अर्थात् विवेकात्मक अध्यवसायवान् है । सदा सर्वदा निरन्तर युक्त समाहित संकल्प विकल्पात्मक मन से युक्त है अर्थात् मनोरूप प्रग्रहवान् है । तस्य एतादृश सारथी प्रग्रह विशिष्ट आत्मारूप पथी का अश्व स्थानापन्न चक्षुरादिक इन्द्रिय वशवर्ती स्वाधिकार में रहने लगते हैं, जिससे कि वह रथी जीव पुनः संसाररूप समुद्र में नहीं डूबता है । इसमें अनुरूप दृष्टान्त बतलाते हैं **'सदश्वाइवसारथेरिति'** निपुणबुद्धिक दृढप्रग्रहवान् सारथी रथ चालक का सदश्व के समान

अर्थात् जिस तरह सुशिक्षित अश्व दृढ प्रग्रह से युक्त सत्पथ में चलनेवाला अश्व रथी के अधिकार में रहता है। उसी तरह इस जीवात्मा का भी होता है ॥६॥

यस्त्वविज्ञानवान् भवत्यमनस्कः सदाऽशुचिः । न स तत्पदमाप्नोति संसारं चाधिगच्छति ॥७॥

यस्तु विज्ञानवान् भवति स मनस्कः सदा शुचिः । स तु तत्पदमाप्नोति यस्माद् भूयो न जायते ॥८॥

जो कोई साधकवर्ग सदा विवेकरहित एवं निग्रह रहित मन तथा अपवित्र होता है वह अपवित्र साधक मानव उस परब्रह्म श्रीरामजी के पद-मुक्तिधाम को प्राप्त नहीं कर सकता है परिणामतः संसार को ही वार-वार प्राप्त कर लेता है ॥७॥

पर जो कोई साधक सदा विज्ञानयुक्त सावधान मन एवं पवित्र रहता है वह साधक तो नाशरहित परब्रह्म श्रीरामजी के पद को अनायास पा लेता है जिस परधाम श्रीसाकेत को प्राप्त कर पुनः इस संसार में जन्म नहीं लेता है ॥८॥

अश्वनिरूपितानामिन्द्रियाणां वशीकरणेऽवशीकरणे च यद्भवति तत्प्रदर्शयति श्लोकद्वयेन यस्त्वेति यः रथित्वेन रूपित आत्मा, अविज्ञानवान् अविवेकयुक्तः अमनस्कोऽनिगृहीतमनाः तत एव हेतोः सदा सर्वदा अशुचिः विषयचिन्ताप्रवणतया मलिनान्तःकरणो

भवति सः तादृश आत्मा तत्पदम् पद्यते इति पदम् प्राप्यम् तत् प्रसिद्धम् पूर्वोक्तं परमात्त्मतत्वं साकेताख्यं देशविशेषमित्यर्थः न आप्नोति न लभते प्राप्तव्यप्राप्त्य भाव एव न केवलं किन्तु अनर्थोऽपि तस्य भवतीत्याह संसारं चाधिगच्छति संसारं जन्ममरणचक्ररूपम् अधि आधिक्येन पौनः पुन्येन गच्छति प्राप्नोतीत्यर्थः ॥७॥

यस्तु रथी आत्मा विज्ञानवान् विवेकात्मकाध्यव साययुक्तः समनस्कः प्रगृहीतमना अत एव सदा निरन्तरं शुचिः परमात्मतत्वचिन्तामग्नतया पवित्रान्तःकरणः भवति तत एव हेतोः सः तादृशमनोध्यवसाययुक्तः तत्पदं परमपुरुषरूपं प्राप्यम् अप्राकृतदेशरूपं साके ताख्यं स्थानं वा आप्नोति लभते । यस्मात् सम्प्राप्तात् पदात् च्युतिरहितः सन् भूयः पुनः न जायते संसार चक्रे न पततीत्यर्थः ॥८॥

अश्व के उपमान से उपमित जो इन्द्रियवर्ग तादृश इन्द्रियों का वशीकार तथा अवशीकार से जो गुण एवं दोष होता है उस बात को श्लोकद्वय से बतलाते हैं- 'यस्त्वविज्ञानवानित्यादि' रथ स्वामी रूपसे उपमित जो आत्मा भोक्ता जीव अविज्ञानवान् होता है अर्थात् अवि वेकयुक्त होता है । तथा अमनस्क होता है अर्थात् जिसका मन अगृहीत होता है । और इसी अगृहीत

मनरूप कारण से सर्वदा अशुचि होता है अर्थात् शब्दादि की चिन्ता में संलग्न रहने से सर्वदा मलिन अन्तःकरणवान् रहता है। एतादृश आत्मा जीव उस पद को, प्राप्त जो किया जाय उसे पद प्राप्य कहते हैं तादृश प्रसिद्ध उस परमात्मतत्व को जो कि साकेत नाम से प्रसिद्ध देशविशेष है उसे वह पूर्वोक्त आत्मा जीव प्राप्त नहीं करता है। केवल मोक्ष जो जीव से प्राप्य है उसकी प्राप्ति नहीं हुई, इतना ही नहीं किन्तु तादृश जीव को अनर्थ की प्राप्ति भी होती है इस बात को बतलाते है '**संसारं चाधिगच्छति**' इति। संसार को भी प्राप्त करता है। संसार जन्ममरणादिचक्र को अधि-अधिक रूपसे अर्थात् बारंबार प्राप्त करता है। अर्थात् अविवेकादियुक्त आत्मा मोक्ष को तो प्राप्त नहीं ही करती है किन्तु जन्ममरणादिरूप संसारानर्थ को पुनः पुनः प्राप्त करती है ॥७॥

और जो शरीररूप रथ का स्वामी जीवात्मा विज्ञानवान् होता है अर्थात् विवेक लक्षण अध्यवसाय से युक्त होता है तथा समनस्क सदा गृहीत मनवाला होता है। अतएव निरन्तर सर्वदा शुचि पवित्र होता है अर्थात् परमात्मतत्व की चिन्ता संलग्न रहने से पवित्रान्तःकरणवान् होता है। इसी हेतु से वह जीव मन तथा

तादृश अध्यवसाय युक्त होने से उस पद को परमपुरुष स्वरूप प्राप्य साकेत नामक अप्राकृत देश लक्षण स्थान विशेष को प्राप्त करता है। जिस संप्राप्त च्युतिरहित पद सायुज्य मोक्ष से पुनः लौटता नहीं है अर्थात् संसारचक्र में उसका पतन नहीं होता है। गमनागमन विवर्जित साकेत पद को प्राप्त करता है ॥८॥

विज्ञानसारथिर्यस्तु मनःप्रग्रहवान्नरः ।
सोऽध्वनः पारमाप्नोति तद्विष्णोः परमं पदम् ९

परन्तु जो साधक विज्ञान-विवेकशील सारथि से युक्त मनस्वरूप लगाम वाला है वह श्रेष्ठ साधक अध्व-जगतरूप मार्ग से पार उतरकर विष्णु-सर्वव्यापक सर्वेश्वर श्रीरामजी के उस वेद लोक प्रसिद्ध परमपद श्रीसाकेत दिव्यधाम को प्राप्त करता है ॥९॥

विज्ञानं पूर्वोक्तबुद्धिरूपम् सारथिर्यस्य तादृशः विवेकयुक्तमनोरूपः प्रग्रहः तद्वान् वशीकृतमनाः यो नरः उपासको जीवः स अध्वनः संसारचक्ररूपस्य मार्गस्य पारं पारभूतम् विष्णोः श्रीरामारूपस्य भगवतः तत्प्रसिद्धं साकेतनाम्ना पदम् स्थानमप्राकृतदेश विशेषम् परमात्मतत्वं वा श्रीरामाख्यम् आप्नोति यतः पुनः संसारसागरे नागच्छतीतिभावः ॥९॥

'विज्ञानसारथिरित्यादि' विज्ञान अर्थात् पूर्वोक्त बुद्धिरूप सारथी अश्वसंचालक है जिसका एतादृश जी

वात्मा । तथा विवेकयुक्त मनरूप प्रग्रह लगाम वाला अर्थात् वशीकृत मनवाला जो उपासक अधिकारी है वह जीव अध्व का अर्थात् संसारचक्र रूपमार्ग के पार को अर्थात् पाररूप विष्णु श्रीरामरूप साकेताधिपति भगवान् का अतिप्रसिद्ध साकेत नामक पद को अप्राकृत देश विशेष को अथवा परमात्मतत्व सर्वेश्वर श्रीरामजी को प्राप्त कर जाता है । जिस परमात्मतत्व को प्राप्त करके पुनः संसाररूप सागर को प्राप्त नहीं करता है यानी सायुज्य मोक्ष को प्राप्त करके भगवान् के कैङ्कर्य में संलग्न होता है ॥९॥

इन्द्रियेभ्यः पराह्यर्था अर्थेभ्यश्च परंमनः ।
मनसस्तु पराबुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान्परः ॥१०॥
महतः परमव्यक्तमव्यक्तात् पुरुषः परः ।
पुरुषान्न परं किञ्चित् सा काष्ठा सा परा गतिः ११

यह सर्व प्रसिद्ध है कि अर्थ-भोग आदि विषय इन्द्रिय आदि से बलवान् है एवं मन अर्थ आदि से बलशाली है तथा बुद्धि मनसे शक्तिशाली-परा है तो पूर्वोक्त इन सबसे पर महान् आत्मा-जीवात्मा बुद्धि से पर-उत्कृष्ट है ॥१०॥

महान् जीव से अव्यक्त-सूक्ष्मभूतवर्गों का परिणामरूप शरीर पर है एवं अव्यक्त-शरीर से परपुरुष सर्वेश्वर श्रीरामजी पर-उत्तम-श्रेष्ठ हैं उस परपुरुष श्रीरामजी से पर-शक्तिशाली कोई या कुछ भी नहीं है वही अन्तिम

सीमा तथा सबभूतवर्ग की गति-अन्तिम विश्राम स्थान है ॥११॥

वशीकृतेन्द्रियमनोबुद्धिरेवोपासकः परमपदमुपगच्छतीति 'स तु तत्पदमाप्नोती' त्यन्तेन प्रतिपादितम् सम्प्रति रथादिरूपितशरीरादिषु वशीकरणे किं कस्मात् प्रधानम् किं पर्यन्ता च वशीकार्यतेति प्रतिपादयितुमाह इन्द्रियेभ्यः इति इन्द्रियेभ्यः चक्षुरादिभ्यः वागादिभ्यश्च हयत्वेन रूपितेभ्यः अर्थाः शब्दादयः विषयाः गोचरत्वेन रूपिताः पराः वशीकरणे प्रधानाः प्रवलाः इति यावत् विषयोपस्थितौ वशीकृतेन्द्रियाणामपि क्षोभदर्शनात् अर्थेभ्यः शब्दादिभ्यश्च मनः प्रग्रहत्वेन रूपितम् संकल्पविकल्पात्मकमिन्द्रियम् परम् प्रबलम् यतः उपरताखिलेन्द्रियव्यापारस्य असन्निहितेऽपि चार्थे मनः विषयसंकल्पप्रवणं भवत्येव यदि न वशीकृतम् । मनसोऽपि अपेक्षया वशीकरणे बुद्धिरध्यवसायरूपा सारथित्वेन रूपिता पराप्रबला वशीकृतमनसामपि विषयाध्यवसायेन संसारगर्तनिपातस्य सौभर्यादीनां शाश्वतोऽवगमात् । बुद्धेरप्यपेक्षया आत्मारथित्वेन रूपितः शरीराधिष्ठाता परः प्रबलः तस्य कर्तृत्वादिविशिष्टतया बुद्ध्याद्यपेक्षयाप्रबलत्वात् स एव चात्मा महान् वशीकार्यतायाम् बुद्ध्याद्यपेक्षया अतिप्रबल इत्यर्थः । तदिच्छाधीनत्वात् बुद्ध्यादिव्यापाराणाम् ।

महतः परमव्यक्तम् महतः बुद्ध्याद्यपेक्षयाऽतिप्रबलात् शरीराधिष्ठातुरात्मनोऽपेक्षया अव्यक्तम् भूतसूक्ष्मपरिणामभूतम् रथत्वेन रूपितम् शरीरं परम् वशीकरणे प्रधानम्, शरीराऽभावे शरीराधिष्ठातृत्वेनाभिमतस्याऽत्मनोऽपि प्रवृत्तीनां पुरुषार्थगोचराणामसम्भवित्वात् शरीरस्यैव धर्मादिसाधने प्रधानत्वात् त्रिगुणात्मकशरीरसत्वे आत्मनि वशीकृतेऽपि गुणानुगुण्येन प्रवृत्तीनामवश्यंभावाच्च । ननु च आत्मानं रथिनं विद्धीति रूपकप्रकरणे ये बुद्ध्यादयो गृहीतास्तेषामत्रवशीकरणप्रकरणे स्वशब्देनैव ग्रहणमस्ति शरीरस्य वाचकं किमपि पदमत्रनास्तीति कथं शरीरस्य प्रधानत्वमात्मापेक्षयोच्यत इति चेच्छरीरवाचकपदाभावेऽप्यव्यक्तशब्दवाच्यभूतसूक्ष्मपरिणामरूपस्य शरीरस्यैव परिशेषादत्रग्रहणसंभवात् सांख्याभिमतस्य प्रधानस्याव्यक्तशब्देनात्र ग्रहणे कारणाभावाच्च । अव्यक्तात्पुरुषः परोऽव्यक्तं शरीरं परिशेषादेव, तस्मादपि परः प्रधानः पुरुषः सर्वान्तरात्मभूतः परमपुरुषः श्रीरामाख्यः, स ह्यन्तर्यामितयोपासकस्यापि स्थितिप्रवृत्तिहेतुर्भवति स्वसंकल्पद्वारा, साधनान्तराणि समाश्रयमाणोऽपि साधकस्तत्प्रसादमन्तरेणाकर्मण्य एव भवति पुरुषार्थेषु, शरीरमपि तत्सङ्कल्पवशेनैव क्वचिद् व्यावर्त्तुं पारयेद् विषये

नान्यथा यदा तु सर्वदहनसर्ववहनशक्त्यभिमानवतो वह्निवाय्वादीनामपि तृणादिदहनादिव्यापारोऽवरुध्यते तथा वराकस्य शरीरस्य, तस्मादव्यक्तशब्दवाच्यशरीरात्परत्वं युक्तमेव परमपुरुषस्य ।

ननु पुरुषापेक्षयापि किमपि भवेत्प्रधानं वशीकरण इति शङ्कायां निषेधमाह-पुरुषान्नपरं किञ्चित् । पुरुषात्परमपुरुषाच्छ्रीरामात् किञ्चिदपि परं श्रेष्ठं वशीकार्यतायां नास्ति, वशीकृते हि श्रीरामाख्ये परब्रह्मणि किमपि वशीकर्त्तव्यमेव नावशिष्यते यत्प्रधानमप्रधानं वा स्यात् सर्वस्य परमपुरुषवश्यत्वात् स यस्य वशीभूतस्तस्य किमपरमवशिष्येतावशीकृतमितिभावः । तस्य सर्वस्वतन्त्रस्य परमपुरुषस्य वशीकरणे च शरणागतिरेवाश्रयणीया, सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते । अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम । 'तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत' इत्यादितदीयवाक्येभ्यस्तथावगमात् । पुरुषान्न परं किञ्चिदित्यत्र हेतुमाह-सा काष्ठा स पुरुष एव वशीकार्यतायाः काष्ठा । चरमोऽवधिरित्यर्थः, काष्ठाशब्दलिङ्गापेक्षया तच्छब्दोऽपि स्त्रीलिङ्गतया निर्दिष्टः सर्वनाम्न उद्देश्यविधेयान्यतरलिङ्गभावत्वस्वभावात् । तस्य चरमावधित्वे हेतमाह-सा परा गतिः । अत्रापि तच्छब्दो गतिशब्दापेक्षया

स्त्रीलिङ्गः । सा स परपुरुष एव परा सर्वतः श्रेष्ठा । चरमेति यावत् । गतिर्गम्यते इति गतिः प्राप्य इत्यर्थः। श्रीरामस्यैव परमप्राप्यत्वात्तस्मिंश्च शरणागत्या वशी कृते किमपि वशकरणीयं नास्त्येव तस्मात् स एव वशीकरणस्य काष्ठा चरम उपायः । चरम उपेयश्च स एवेतिभावः ॥१०-११॥

जिसने मन बुद्धि के ऊपर अपना अधिकार प्राप्त कर लिया है एतादृश उपासक ही परमपद को प्राप्त करता है इस बात का 'स तु तत्पदमाप्नोति' इत्यादि प्रकरण से प्रतिपादन किया है । अब इसके वाद रथादि के उपमान से उपमित शरीरादिक के वशीकरण करने में कौन किसकी अपेक्षा से प्रधान है तथा कियत्पर्यन्त यह वशी कर्तव्यता है इसका प्रतिपादन करने के लिये कहते हैं-'**इन्द्रियेभ्यः**' इत्यादि । चक्षुरादिक ज्ञानेन्द्रिय तथा वागादिक कर्मेन्द्रिय जो कि अश्वरूप से उपमित हुए हैं तादृश इन्द्रिय की अपेक्षा से अर्थ शब्दादिक जो विषयजात हैं जिनका विषय रूपसे कथन किया गया है, वे शब्दादिक पर हैं अर्थात् वशीकरण में प्रधान प्रबल हैं। क्योंकि शब्दादिक विषयों के उपस्थित होने पर वशीकृत इन्द्रियों में भी क्षोभ देखने में आता है अर्थात् चक्षुरादिक इन्द्रियों पर जिनका अधिकार है उनको भी

अकस्मात् मनोहर विषय की उपस्थिति होने पर इन्द्रिय में चञ्चलता आ जाती है । और अथ जो शब्दादिक विषय हैं तदपेक्षया प्रग्रह लगाम के उपमान से उपमित संकल्प विलक्षण जो अन्तःकरण मन है वह पर है अर्थात् प्रबल है, क्योंकि इन्द्रिय चक्षुरादिक के व्यापार का उपराम रहने पर तथा विषय का सानिध्य नहीं रहने पर भी संकल्प विकल्प मन में होता रहता है यदि मन वशीकृत नहीं हो तो भी इसलिये बाह्य इन्द्रिय तथा विषय की अपेक्षा से मन अतिप्रबल है । मन की अपेक्षा से अध्यवसायरूपा जो बुद्धि है जो कि सारथी के उपमान से उपमित है तादृश बुद्धि परा प्रबला है, क्योंकि मन परकार है जिनका एतादृश व्यक्ति का विषयाध्यवसाय से संसाररूप गर्त में पतन हुआ ऐसा सौभरी प्रभृतिक महापुरुष के लिये शास्त्र में सुना जाता है । इसलिये मन की अपेक्षा से बुद्धि प्रबल है । तथा बुद्धि की अपेक्षा से आत्मा जो कि रथी के उपमान से उपमित है तथा शरीर का अधिष्ठाता है वह प्रबल है जिसलिये वह आत्मा कर्तृत्वादि धर्मविशिष्ट होने से बुद्ध्याद्यपेक्षया प्रबल है अतः एतादृश आत्मा महान् है अर्थात् वशीकार करने में बुद्ध्यादि की अपेक्षा से अतिप्रबल है, क्योंकि आत्मा की जो इच्छा है तादृश

इच्छा के अधीन बुद्धि प्रभृति का व्यापार होता है। महत् से पर अव्यक्त है अर्थात् महत् से बुद्ध्यादि की अपेक्षा से अत्यन्त प्रबल जो शरीरादि का अधिष्ठाता आत्मा तादृश आत्मा की अपेक्षा से अव्यक्त अर्थात् सूक्ष्म भूतों का परिणामरूप रथ के उपमान से उपमित जो शरीर है वह पर प्रबल है। क्योंकि भोग का अधिष्ठान अर्थात् आधाररूप रथ के उपमान से उपमित है वह शरीर पर है अर्थात् वशीकरण में प्रबल है, क्योंकि शरीर के अभाव में शरीर के अधिष्ठानरूप से अभिमत आत्मा की जो प्रवृत्ति है जो कि पुरुषार्थ विषयक है वह असंभवित है। शरीर ही धर्मादि के साधन में प्रधान है और त्रिगुणात्मक शरीर के रहते हुए आत्मा को वशीकृत करने पर भी गुण के अनुगुण प्रवृत्ति का होना असंभव है।

प्रश्न-'**आत्मानं रथिनं विद्धि**' इस रूपक प्रकरण में यानी उपमानोपमेय प्रवाह में जिन जिन बुद्धि प्रभृति पदार्थों का ग्रहण किया गया है उन सब पदार्थों का इस वशीकरण में स्वशब्द से अर्थात् बुद्ध्यादिक तत्तत् शब्द से ग्रहण है किन्तु शरीर का वाचक तो कोई भी पद यहां नहीं है तब यहां किस तरह आत्मा की अपेक्षा से शरीर में प्रधानत्व कहते हैं अर्थात् आत्मा की अपेक्षया

शरीर प्रधान है यह किस तरह से है क्योंकि यहां शरीर वाचक पद तो नहीं है ।

समाधान-यद्यपि शरीर वाचक शब्द नहीं है तथापि अव्यक्त शब्द से शरीर का ग्रहण होता है अर्थात् अव्यक्त शब्द का वाच्य जो भूत सूक्ष्म तादृश सूक्ष्मभूत का परिणाम लक्षण शरीर का ग्रहण अव्यक्त शब्द से होता है । यद्यपि अव्यक्त शब्द सांख्याभिमत प्रधान का बोधक है तथापि प्रकृत में अव्यक्त शब्द से सांख्याभिमत प्रधान का ग्रहण करने में कोई भी कारण विशेष नहीं है जिससे कि अव्यक्त शब्द से प्रधान का ग्रहण किया जाय किन्तु अव्यक्त शब्द से सूक्ष्मभूत से जायमान शरीर का ग्रहण होता है । '**अव्यक्तात् पुरुष परः**' इति । (अव्यक्त पद बोध्य शरीरापेक्षया पुरुष पर उत्कृष्ट है) इसमें परिशेषात् अव्यक्त पदबोध्य शरीर है उस शरीर से पर अर्थात् प्रधान पुरुष है अर्थात् सभी भूतों के अन्तरात्मा परमपुरुष श्रीरामजी ही पुरुष पदवाच्य हैं । वह भगवान् श्रीरामजी अन्तर्यामी होने के कारण स्वकीय संकल्प द्वारा उपासक की स्थिति प्रवृत्ति में कारण होते हैं । अन्य साधन का आश्रय लेता हुआ भी साधक पुरुष भगवत् कृपा के बिना स्वकीय पुरुषार्थ की सिद्धि में अकर्मण्य ही रहता है । साधक का शरीर भी भगवान् के संकल्प

से ही किसी विषय विशेष के संपादन में समर्थ होता है अन्यथा नहीं। जब सर्वदहन सर्ववहनादि अभिमानवान् अग्नि वायु देवों का भी दहनादिक व्यापार भगवत्कृपा के बिना अवरुद्ध होता है तब वराक गरीब इस शरीर की तो कथा ही क्या है? अतः अव्यक्त पद बोधित शरीर की अपेक्षा से परत्व परमपुरुष में होना युक्त ही है।

क्या वशीकरण करने में पुरुष की अपेक्षा से कोई अन्य वस्तु है जो कि प्रधान हो अर्थात् जिस प्रकार एक से अपर में प्रधानता है उस तरह पुरुषापेक्षया अन्य कोई प्रधानान्तर है? इस शंका का निराकरण करने के लिये कहते हैं-**'पुरुषान्नपरं किञ्चिदिति'** पुरुष-अर्थात् परमपुरुष सर्वेश्वर श्रीरामजी से अन्य कोई भी पदार्थ वशीकार्यता में नहीं है। परमपुरुष भगवान् श्रीरामजी के वशीकृत हो जाने पर अन्य कोई-अन्य कोई भी पदार्थ वशीकर्तव्यता के लिये अवशिष्ट नहीं रहता है जो कि प्रधान अथवा अप्रधान हो। सब पदार्थ परमपुरुष के अधीन हैं। एतादृश परमपुरुष जिससे वशीकृत हो गये उस पुरुष के लिये अवशीकृत कौन पदार्थ अवशिष्ट रहेगा। उस सर्वतन्त्र स्वतन्त्र परमपुरुष के वशीकार करने के लिये भगवान् की शरणागति ही समर्थ है।

ऐसा कहा गया है कि एक वार भी मेरी शरण में जो आया है और मैं आपका हूँ, ऐसा कहने वाले प्राणियों को मैं अभय देता हूँ, ऐसा मेरा व्रत है। हे अर्जुन ? तुम उस परमात्मा की शरण को प्राप्त करो इत्यादि भगवान् का वाक्य है। इसलिये भगवत् शरण ही सर्वार्थ साधक है।

पुरुष की अपेक्षा से कोई अन्य पर प्रधान नहीं है इसमें हेतु बतलाते हैं **'सा काष्ठेत्यादि'** वह परमपुरुष भगवान् श्रीराम वशीकार्यता की चरम अवधि हैं। यहां काष्ठा शब्द स्त्रीलिङ्ग है तद्विशेषणीभूत तत् शब्द भी स्त्रीलिङ्ग में ही प्रयुक्त हुआ है, क्योंकि सर्वनाम शब्द का स्वभाव है कि उद्देश्य तथा विधेय अन्यतर लिङ्गवाला होता है। परमपुरुष चरम अवधि है उसमें हेतु बतलाते है **'सा परा गतिरिति'** यहां भी तत् शब्द स्त्रीलिङ्ग है गति शब्द के विशेषण होने से स्त्रीलिङ्ग में प्रयुक्त है। वह परमपुरुष ही सर्वापेक्षया श्रेष्ठ है। वह परमात्मा परागति है अर्थात् प्राप्य हैं। श्रीरामचन्द्रजी ही परम प्राप्य हैं। वह श्रीराम जब शरणागति द्वारा वशीकृत हो जाते हैं तब कोई अन्य वस्तु वशीकरण के लिये अवशिष्ट नहीं रह जाता है। इसलिये परमपुरुष भगवान्

श्रीरामजी ही वशीकरण के अन्तिम उपाय हैं तथा भगवान् ही चरम उपेय-प्राप्य भी हैं ॥१०-११॥

एष सर्वेषु भूतेषु गूढोत्मा न प्रकाशते । दृश्यते त्वग्य्रया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्म दर्शिभिः ॥१२॥

पूर्व वर्णित यह अन्तर्यामी रूपसे स्थित परब्रह्म सभी भूतवर्ग में गूढ-अपनी अलौकिक शक्ति द्वारा ढका रहता है अतः अवशीकृत इन्द्रिय वालों को प्रकाशित नहीं होता है परन्तु सूक्ष्मदर्शी साधकों द्वारा एकाग्र तथा सूक्ष्म पदार्थ दर्शक बुद्धि के द्वारा दिखता है ॥१२॥

एष चरमोपायत्वेन चरमप्राप्यत्वेन च पूर्वमन्त्रे निर्दिष्टः परमपुरुषः श्रीरामः सर्वेषु भूतेषु गूढः स्वयोग मायासमावृत आत्माऽऽत्मतया वर्तमानः सर्वात्मभूतोऽपि त्रिगुणात्मकस्वमायया समाच्छन्नो न प्रकाशतेऽवशीकृतेन्द्रियाणां स्थूलबुद्धीनाम् । तथापि सूक्ष्म बुद्धिभिः सूक्ष्मार्थविवेचनशक्तिसम्पन्नबुद्धिशालिभिर्जितेन्द्रियैरग्य्रया श्रेष्ठ्यैकाग्य्रवत्याऽत एव सूक्ष्मया सूक्ष्मार्थविवेचनशक्तिमत्या बुद्ध्या करणेन दृश्यते । साक्षात् क्रियत इत्यर्थः । गूढोत्मेत्यत्र गूढ आत्मेति समासे पृषोदरादित्वादात्मशब्दाकारस्योकारोगुणश्च ॥१२॥

'**एष सर्वेषु**' इत्यादि । यह चरम उपाय से तथा चरम प्राप्यरूप से पूर्वमन्त्र में निर्दिष्ट परमपुरुष भगवान्

साकेताधिपति श्रीरामजी सर्वप्राणियों में गूढ हैं अर्थात् स्वकीय योगमाया से समावृत आच्छादित हैं। तथा सभी भूतों में आत्मरूप से वर्तमान हैं। **'न प्रकाशते'** इति। वह भगवान् सभी भूतों के आत्मस्वरूप होने पर भी त्रिगुणात्मक जो स्वकीय माया है तादृश माया से समाच्छन्न-आवृत होने से प्रकाशित नहीं होते हैं उस व्यक्ति के लिये, जो कि अवशीकृत इन्द्रिय वाले हैं अर्थात् स्थूल बुद्धिक हैं एतादृश व्यक्ति के लिये आच्छादित होने से प्रकाशित नहीं होते हैं तथापि सूक्ष्म बुद्धियों से अर्थात् सूक्ष्म अर्थ विषय के विवेचन करने की जो शक्ति तादृश शक्ति संपन्न बुद्धिशाली जितेन्द्रिय व्यक्तियों से। श्रेष्ठ-एकाग्र बुद्धि द्वारा अत एव सूक्ष्म अर्थात् सूक्ष्मार्थ विवेचन शक्तिमती बुद्धिरूप करण से साक्षात्कार का वह परमात्मा विषय होते हैं-**'साक्षात् क्रियते'** इत्यर्थः इस कथन से यह सिद्ध होता है कि प्रत्यक्ष करण जनित ज्ञान का विषय परमात्मा है ननु शब्द जनित ज्ञान का विषय है। एतावता शब्द जनित प्रत्यक्षवादियों का मत खण्डित होता है, अपरोक्ष ज्ञान शब्द जन्य नहीं है किन्तु प्रत्यक्ष करणजन्य है। शब्द प्रमाण परोक्ष ज्ञान का ही जनक होता है। यद्यपि शब्द से अपरोक्ष ज्ञान होता है इसमें **'दशमस्त्वमसि'** इस

वाक्य का दृष्टान्त देते हैं तथापि दशमस्त्वमसि में भी चक्षु से ही व्यक्ति विषयक अपरोक्ष होता है शब्द तो कथञ्चित् संशय निवर्तकता मात्र से उपयुज्यमान होता है। एक ही सूक्ष्मार्थ ज्ञान में पटुकरण अपटुकरण में परोक्षापरोक्षत्व देखने में आता है । अत एव **'एषो णुरात्मा चेतसा वेदितव्यः'** इत्यादि वचन जात सार्थक होता है । इसमें विशेष विचार अन्यत्र देखें । **'गूढोत्मा'** यहां गूढश्चासौ आत्मा एतादृश समास के वाद पृषोदरादित्वात् आत्मा में आकार को उ आदेश हो जाता है तथा **'आद्गुणः'** इससे गुण करके गूढोत्मा यह प्रयोग सिद्ध होता है । व्याकरण में कहा जाता है **'भवेद्वर्णागमाद्धंसः सिंहो वर्णविपर्ययात् । गूढोत्मावर्णविकृतेर्वर्णनाशात्पृषोदरम्'** इति ॥१२॥

यच्छेद् वाङ्मनसी प्राज्ञस्तद् यच्छेज् ज्ञान आत्मनि । ज्ञानमात्मानि महति नियच्छेत् तद् यच्छेच्छान्त आत्मनि ॥१३॥

ज्ञानवान् पुरुष पहले वाणी प्रभृति सभी इन्द्रियों को मनमें निरोध कर उस मन को भी देह में स्थित ज्ञान में संयोजित कर उस ज्ञान को भी शरीर के अधिष्ठाता महान् आत्मा-जीवात्मा में संयोजित करे अनन्तर उस जीवात्मा को शान्तरूप आत्मा-सर्वेश्वर अन्तर्यामी परब्रह्म श्रीरामजी में संनियोजित करे ॥१३॥

वशीकर्त्तव्यतायां यदपेक्ष्य यस्य प्राधान्यं तदुक्त्वा संप्रति वशीकरणरीतिमुपदिशति यच्छेदिति । प्राज्ञः सूक्ष्मार्थविवेचनचतुरबुद्धिर्जनो वाग्वाचमित्यर्थः । द्वितीया विभक्तेश्छान्दसो लुक् । मनसी मनसीत्यर्थः इकारस्य सप्तम्येकवचनस्य छान्दसं दीर्घत्वम् । वाक्पदमपरेषामपीन्द्रियाणां चक्षुरादीनामुपलक्षणम् । तथा च बुद्धिमाञ्जनः सर्वाणि कर्मेन्द्रियाणि ज्ञानेन्द्रियाणि च स्वस्वविषयेभ्यः समाकृष्य प्रथमं मनसि यच्छेदुपसंहरेन्नियमयेदिति यावत् । इन्द्रियाणां मनसि नियमनन्तु मनस आनुकूल्येन प्रवर्तनम्, मनसः प्रातिकूल्येन प्रवृत्तिराहित्यापादनञ्च । एतदेव च मनोरूपप्रग्रहविशिष्टत्वमिन्द्रियाश्वानाम् । प्रग्रहावबद्धा अश्वास्तदानुकूल्येनैव प्रवर्तन्ते न विपरीतमितिदृष्टचरं मनःप्रग्रहनियन्त्रिता इन्द्रियाश्वा अपि न विषयाभिमुखं प्रवर्तेरन्निति वशीकृता भवेयुरेवेत्यभिप्रायः । तन्मन आत्मनि ज्ञाने यच्छेदात्मनीत्यौपश्लेषिकयाधारे सप्तमी तेनात्मगते ज्ञाने धर्मभूते बुद्धिशब्दवाच्ये यच्छेदध्यवसायानुकूलतयैव यथा मनः प्रवर्तेत तथा कुर्यादित्यर्थः। ज्ञानपदेनाध्यवसायात्मकबुद्धेर्विवक्षणात् । आत्मनि ज्ञान इत्येवं व्यधिकरणकथनेन ज्ञानस्यात्मत्वं परैरङ्गीकृतं निरस्तं भवतीति ध्येयम् । मनसोऽध्यवसायानु

कूलवृत्तिकरणे स्वातन्त्र्येण सङ्कल्पासमर्थत्वाद् विषय प्रवणता नस्यादेतदेव मनसो वशीकृतत्वन्नामेतिभावः। ज्ञानमात्मनि महति नियच्छेज्ज्ञानमध्यवसायात्म कन्तन्महत्यात्मनि जीवस्वरूपे नियच्छेज्जीवस्वरूपमात्र विषयकतया नियन्त्रयेदध्यवसायो जीवमात्रालम्बने यथा भवेत् तथा नियमनं कार्यमित्येवास्य ज्ञानस्य वशीकरणं नाम तदा बुद्धिर्जीवात्मातिरिक्तविषया वलम्बिनी न भवतीतिभावः। तद् यच्छेत् शान्त आत्मनि तत् तमित्यर्थश्छान्दसत्वात् लिङ्गव्यत्यासः। तं महान्तमात्मानं जीवस्वरूपमिति यावत्। शान्ते षडूर्मिरहित आत्मनि परमपुरुषे यच्छेत् तत्प्रयत्नतामापा दयेद् यद्वा तच्छेषतामापादयेत् परमपुरुषप्रपन्नतैव तच्छेषतैव वा जीवस्य वशीकरणं परमपुरुषप्रपत्त्यैव रथिनो जीवस्य गन्तव्याध्वपारभूतपरमप्राप्तिर्नान्यथेति जीवात्मानं परमपुरुषशरणागतं कुर्यादितिभावः।१३।

वशीकर्तव्यता में जिसकी अपेक्षा से जिसमें प्रधान ता है जिसकी उस बात को बतला करके संप्रति वशी करण के प्रकार को बतलाने के लिये कहते हैं-**'यच्छे द्वाङमनसि'** इत्यादि। प्राज्ञ अर्थात् सूक्ष्म अर्थ विषय के विवेचन करने में चतुर है बुद्धि जिनकी एतादृश जो व्यक्ति वह वाक् वाणी को। यहां वाक् के आगे जो

द्वितीया विभक्ति थी उसका छान्दसत्वात् लोप हो गया है। मनसि-मन में यहां सप्तमी विभक्ति के एक वचन का जो इकार है उसका दीर्घ हुआ है छान्दस होने से ही। और प्रकृत में वाक्पद जो है वह इतर चक्षुरादिक इन्द्रियों का भी संग्राहक है। तब कर्मेन्द्रिय ज्ञानेन्द्रिय को स्वकीय स्वकीय विषय से परावर्तन करके सर्वप्रथम मन में उपसंहृत मिला देवें। मन में इन्द्रियों का नियमन कर देना इसका अभिप्राय यह है कि मन की अनुकूलता से इन्द्रियों का प्रवर्तन तथा मन की प्रतिकूलता से प्रवृत्तिराहित्य होना। यही मनोरूप प्रग्रह विशिष्टत्व इन्द्रियरूप अश्वों का है। प्रग्रह लगाम में बन्धा हुआ अश्व प्रग्रह की अनुकूलता से ही प्रवृत्त होता है किन्तु उसके विपरीत प्रवृत्त नहीं होता है ऐसा देखने में आता है। इसी तरह मनरूप प्रग्रह से नियन्त्रित इन्द्रियरूप अश्व भी विषय के अभिमुख प्रवृत्त नहीं होते हैं। इसप्रकार इन्द्रियरूप अश्व वशीकृत होते हैं। एतादृश मनको आत्मा अर्थात् ज्ञान में मिला दे नियमन करे। आत्मनि में जो सप्तमी विभक्ति है वह औपश्लेषिक आधार अर्थ में है इसलिये आत्मा का धर्मरूप ज्ञान में बुद्धि शब्द वाच्य में नियमन करें। अर्थात् अध्यवसाय के आनुकूल्य से ही जिस तरह मन प्रवृत्त हो वैसा करें।

यहां ज्ञानपद से अध्यवसायात्मक बुद्धि की विवक्षा है। ज्ञाने आत्मनि इस कथन से आत्मा तथा ज्ञान को जो एक मानते हैं उनका मत परास्त होता है। मन का अध्यवसायानुकूल वृत्ति का संपादन करने से मन को स्वतन्त्र रूपसे संकल्पादि कार्य में असमर्थता होने से विषयोन्मुखता नहीं होती है, यही मन का वशीकृतत्व है। **'ज्ञानमात्मनि महति नियच्छेदिति'** ज्ञान अर्थात् अध्यवसाय लक्षण बुद्धि को महान् आत्मा जीव स्वरूप में नियमन करें। अर्थात् जीवस्वरूप मात्र विषयत्वेन नियन्त्रिण करें, जिस तरह अध्यवसाय जीवमात्रालम्बनक हो वैसा नियमन करें। यही इस ज्ञान का वशीकरण है जबकि वह बुद्धि जीव भिन्न विषय का अवलम्बन करे। **'तद्यच्छेच्छान्त आत्मनि'** इति। तत् इस नपुंसक का तम् इसप्रकार पुल्लिग में व्यत्यास समझें। उस महान् आत्मा जीव को शान्त छ प्रकार के ऊर्मिरहित आत्मा परमपुरुष में नियमन करें अर्थात् परमेश्वर प्रपन्नता का आपादन करें अथवा परमेश्वर श्रीरामजी की शेषता का आपादन करें। परमपुरुष प्रपन्नत्व अथवा परमपुरुष श्रीरामशेषत्व ही जीव का वशीकरण है। परमेश्वर प्रपत्ति से ही रथी जो जीव है उसे गन्तव्य मार्ग का पाररूप परमपद की प्राप्ति होती है किन्तु परमेश्वर श्रीराम प्रपत्ति

के बिना परमपद की प्राप्ति नहीं होती है। इसलिये जिसप्रकार से हो उसप्रकार से जीवात्मा को परमपुरुष परमात्मा साकेताधिपति का शरणागत बनाया जाय, यह इस मन्त्र का अभिप्राय है ॥१३॥

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्यवरान्निबोधत। क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्ग पथस्तत्कवयो वदन्ति ॥१४॥

सायुज्य मुक्ति की अभिलाषा वाले जीवो ? उठो यानी परत्व ज्ञान प्राप्ति हेतु ईश्वराभिमुख हो जाओ मोह निद्रा को त्याग करो परतत्त्व ज्ञानी आचार्यों को प्राप्तकर परब्रह्म श्रीराम विषयक ज्ञान को प्राप्त करो कवि-तत्त्वदर्शी विवेकि साधकजन उस आत्मा तत्त्वरूप ज्ञान मार्ग को अति तीक्ष्ण दुस्तर छूरे की धार जैसा दुर्गम कष्टसाध्य कहते हैं ॥१४॥

एवं वशीकरणरीतिमुपदर्श्याधिकारवत उपासकानुत्साहयति-उतिष्ठतेति। अनाद्यविद्यायां सुप्ता हे उपासका उत्तिष्ठत विषयारामं परित्यजतात्मज्ञानाभिमुखा भवतेत्यर्थः। जाग्रत अनर्थमूलभूताज्ञाननिद्रां नाशयत। वरान् श्रेष्ठान्नात्मतत्वज्ञानचयानित्यर्थः प्राप्याभिगम्य विधिपूर्वकं तच्छरणे गत्वा निबोधत, तेनोपदिष्टमात्मतत्त्वं विज्ञेयं तदवगच्छत नात्रोपेक्षा विधेयेति भावः। आचार्योपगमने हेतुमुपदिशति तदात्मतत्त्वज्ञानं

दुर्गं दुर्गमं दुःखसम्पाद्यम् । पथः पन्थानं मार्गमितिया वत् । पथ इत्यत्र वचनव्यत्यासश्छान्दसः । कवयस्तत्त्व वेत्तारो जना वदन्ति । कथमिवदुर्गममितिशङ्कानिरा कृतये क्षुरधारत्वेन तत्त्वज्ञानमार्गं रूपयति-तत्तत्वज्ञानं निशितातितीक्ष्णाऽत एव दुरत्यया दुःखेनात्ययोऽति क्रमणं यस्यास्तादृश्यानुल्लङ्घनीयेत्यर्थः । एवं भूता क्षुरस्यायुधविशेषस्य धाराग्रभागस्तत्त्वज्ञानमार्गोऽति तीक्ष्णक्षुरधारावद् दुःसंचारोऽतस्तत्वविदाचार्योपगमनं विना स्वातन्त्र्येण तदर्थं यत्ने क्रियमाणे कियत्यप्यनव धानेऽनर्थसंपातः स्यात् । आचार्यद्वारैवात्मतत्त्वं विज्ञेय मितिभावः ॥१४॥

इस तरह वशीकरण के प्रकार को बतला करके अधिकारी जो उपासक है उसे प्रोत्साहित करने के लिये कहते हैं-'**उत्तिष्ठतेत्यादि**' अनादि अविद्या में सोनेवाले उपासकों ? उठो-सांसारिक विषयवासना का परित्याग करके आत्मज्ञान के संपादन के लिये तैयार हो जाओ । '**जाग्रत**' इति । जागो । अनर्थ का कारण जो अज्ञान रूपीनिद्रा है उस निद्रा को विनष्ट करो । '**वरान्निति**' वर श्रेष्ठआत्मतत्व को जानने वाले आचार्य को '**प्राप्य**' प्राप्त करके अर्थात् विधिपूर्वक आचार्य की शरण में जा करके। '**निबोधतेति**' जानो अर्थात् आचार्य से उपदिश्य

मान जानने के योग्य आत्मा को जानो। इस विषय में उपेक्षा नहीं करो। आचार्य के समीप में जाने के कारण को बतलाने के लिये कहते हैं **'दुर्गमिति'** वह आत्मतत्व ज्ञान दुर्ग दुर्गम है अर्थात् दुःखपूर्वक संपादन करने के योग्य है, यह पथ मार्गहै **'पथः'** यह वचन का व्यत्यास छान्दस है। **'कवयो वदन्ति'** कवित्व वेत्तालोग कहते हैं अर्थात् ज्ञानरूप मार्ग को तत्ववेत्ता लोग अतिदुरुह मानते हैं। क्यों यह ऐसा है ? इस शंका के निराकरण के लिये कहते हैं क्षुर की धारा के समान अत एव दुरत्यय है दुःख पूर्वक अतिक्रमण हो जिसका एतादृश है, एतादृश क्षुरा के केश काटने का नापित का जो अस्त्र विशेष, उस क्षुरा की जो धारा अग्रभाग है उसके समान है। तत्व ज्ञान मार्ग अतितीक्ष्ण क्षुरधारा के समान दुःसंचार है इसलिये तत्ववित् आचार्य के उपगमन के बिना स्वतन्त्र रूपसे तत्वज्ञान के लिये यत्न करने पर भी कदाचित् प्रमाद हो जाने पर अनर्थ की प्राप्ति होगी। अतः आचार्य के द्वारा ही आत्मतत्व को जानने के लिये सतत प्रयत्न करना चाहिये ॥१४॥

अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं तथाऽरसं नित्यमगन्धवच्च यत्। अनाद्यनन्तं महतः परं ध्रुवं निचाय्य तं मृत्युमुखात् प्रमुच्यते ॥१५॥

जो प्रकृति सम्बन्धी शब्द से रहित है प्राकृतिक स्पर्श से भी रहित है तथा प्रकृतिजनित रूप बिना का और अव्यय है तथैव प्राकृतिक रस एवं प्राकृतिक गन्ध से भी रहित है और जो नित्य अनादि एवं अनन्त है तथा महान्-जीवात्मा से श्रेष्ठ एवं अचल है उस परब्रह्म श्रीरामजी का आराधना द्वारा अवलोकन दर्शनकर साधक मृत्यु के मुख से सर्वदा के लिये छूटता है ॥१५॥

एवमधिकारिणमुपासकं प्रोत्साह्य मत्त्वा धीरो न शोचतीत्यत्रोक्तं ज्ञानमेव निचाय्य शब्देनोपसंहरन् ज्ञान फलमपि दर्शयितुमाह-अशब्दमित्यादि । **अशब्दं न शब्दो यत्र तादृशं भौतिकशब्दशून्यम् तथाऽस्पर्शं भौतिकस्पर्शरहितम् । अरूपं प्राकृतरूपशून्यम् । तथाऽरसं भौतिकरसरहितम् । अगन्धवत्प्राकृतगन्ध-शून्यम् । यत्प्राकृतशब्दस्पर्शादिवत् तत्पृथिव्यादिदृष्टम नित्यमेतत्परमात्मतत्त्वन्तु तच्छून्यमत एवाव्ययं न व्येत्यु पचयापचयादिविकारमाप्नोति तदव्ययमित्युच्यते, इदन्तु विकाररहितत्वादव्ययमित्यर्थः । अत एव च नित्य मुत्पादविनाशरहितम् । सदैकरूपमित्यर्थः । अनाद्यनन्तं न विद्यते आदिः कारणं यस्य तदनादि, अन्तय-तीत्यन्तो विनाशकः स न विद्यते यस्य तदनन्तमुत्पाद कविनाशकरहितमित्यर्थः । महतो जीवात्मनः सकाशा दपि परं विलक्षणम्, सूक्ष्मजीवस्वरूपादप्यतिसूक्ष्मम्, यद्वा महतो जीवादपि परं भिन्नमित्यर्थः । 'महत्यात्म**

नि' इत्यादौ महच्छब्दसामानाधिकरण्येन जीवस्य ग्रहणादत्रापि महच्छब्देन प्रतीतिरेव कार्या । ध्रुवं स्वरूपस्वभावाभ्यां विकाररहितं स्थिरमितियावत् । एवं भूतं तत्परमात्मस्वरूपं निचाय्य साक्षात्कारविषयं कृत्वा मृत्युमुखान्मृत्योर्मृत्युवद्भयंकरस्य संसारस्य मुखं प्रधानं कारणं कामकर्मादिरूपाविद्याख्यं तस्मात्प्रमुच्यते मुक्तो भवति सर्वबन्धविनिर्मुक्तो भवतीतिभावः ।१५।

उपर्युक्त प्रकार से अधिकारी उपासक को प्रोत्साहित करके '**मत्वाधीरो न शोचति**' इस प्रकरण से कथित जो ज्ञान उसको ही निचाय्य शब्द से उपसंहार करते हुए तथा ज्ञान के फल को बतलाने के लिये कहते हैं- '**अशब्दमस्पर्शमित्यादि**' अशब्द नहीं है शब्द जिसमें एतादृश अर्थात् भौतिक प्राकृत शब्द से रहित । तथा अस्पर्श भौतिक स्पर्शरहित । अरूप प्राकृत रूपसे रहित तथा भौतिक रस रहित एवं प्राकृत गन्धरहित है । जो प्राकृत शब्दस्पर्शादिमान् है वह पृथिव्यादिक पदार्थ है परन्तु यह परमात्मतत्व तो प्राकृत शब्दादि शून्य है । अत एव अव्यय है जो उपचय अपचयादि विकार को न प्राप्त करे उसे अव्यय कहते हैं तो यह आत्मतत्व अव्यय है सर्वविकाररहित होने से । अत एव यह आत्मतत्व नित्य है अर्थात् उत्पाद विनाशरहित है अर्थात् सर्वदा

एकरूप से रहनेवाला है वह आत्मतत्व । '**अनाद्यनन्तमिति**' आदि अन्तरहित है, जिसका कोई कारण नहीं हो उसे अनादि कहते हैं । आदि शब्द का अर्थ होता है कारण । अन्त शब्द का अर्थ है विनाशक, वह विनाशक नहीं है जिसका उसे अनन्त कहते हैं अर्थात् उत्पादक विनाशकरहित तथा महत् जीवात्मा से भी पर अर्थात् विलक्षण सूक्ष्म जो जीव स्वरूप उससे भी अत्यन्त सूक्ष्म । अथवा महत् जो जीव उस जीव से भी पर अर्थात् भिन्न है । '**ज्ञानमात्मनिमहति**' इत्यादि स्थल में महत् शब्द के सामानाधिकरण्य से जीव का ग्रहण किया गया है तो यहां भी महत् शब्द से जीव का ही ग्रहण करना चाहिये । '**ध्रुवमिति**' वह आत्मा ध्रुव है यानी '**ब्रह्मणस्तु विकारो यत् न स्वरूपस्वभावयोः**' इस प्रकार परिणामविमर्श में आचार्यश्री ने कहा है अतः वह ब्रह्मरूप सर्वेश्वर श्रीरामजी स्वरूप तथा स्वभाव से विकाररहित हैं अर्थात् सर्वथा स्थिर हैं । एतादृश परमात्मस्वरूप का साक्षात्कार करके मृत्यु मुख से प्रमुक्त हो जाता है । मृत्यु अर्थात् मृत्यु के समान भयंकर संसार का मुख अर्थात् प्रधान कारण जो काम कर्माविद्या उससे प्रमुक्त हो जाता है अर्थात् सर्वबन्धन से रहित हो जाता है ॥१५॥

नाचिकेतमुपाख्यानं मृत्युप्रोक्तं सनातनम् ।
उक्त्वा श्रुत्वा च मेधावी ब्रह्मलोके महीयते १६

यमदेव से उपदेशित एवं नचिकेता से सुने हुये इस सनातन उपाख्यान यानी ब्रह्मविद्या सम्बन्धी वार्ता को सदाचार्य से श्रवण कर साधकों को उपदेश करनेवाला बुद्धिमान् पुरुष ब्रह्मलोक-दिव्यधाम श्रीसाकेत में आनन्द भोगता है या अति आदर प्राप्त करता है ॥१६॥

एतत्संवादोपदेशश्रवणयोरपि फलमानुषङ्गिकं दर्शयति मन्त्रेणानेन-नाचिकेतमिति । **नाचिकेतसा प्राप्तं नाचिकेतं मृत्युना यमेन प्रोक्तं कुतश्चित् ब्रह्मवादिनो मुखाच्छुत्वा नचिकेतस उपदिष्टं न तु स्वयमेव कृतं तत्र हेतुमाह-यतः सनातनं प्रवाहरूपेण सदा भवमपौरुषेयमित्यर्थः । उक्त्वा कस्मैचिदधिकारवते शिष्यायोपदिश्य श्रुत्वा कुतश्चिद् ब्रह्मवादिनः सकाशाच्छ्रवण प्रत्यक्षं कृत्वा च ब्रह्मलोके ब्रह्मणोलोको ब्रह्मलोकः सत्यलोकस्तत्र महीयते पूज्यते सत्क्रियत इत्यर्थः । महीङ्पूजायांमिति धातुः ॥१६॥**

नचिकेता तथा यमराज का उपदेश तथा श्रवण के आनुषंगिक फल को बतलाते हुए कहते हैं-'**नाचिकेतमित्यादि**' नचिकेता को मृत्यु यमराज से कथित । जिस किसी ब्रह्मवादी के मुख से श्रवण करके नचिकेता के लिये उपदिष्ट न तु स्वयमेव कथित

उपाख्यान को । इसमें कारण बतलाते हैं-'**सनातनम्**' जिसलिये यह उपाख्यान सनातन प्रवाहरूप से सर्वदा होनेवाला अर्थात् अपौरुषेय इस उपाख्यान को कह करके अर्थात् किसी अधिकारी शिष्य को उपदेश दे करके तथा किसी ब्रह्मवादी के मुख से श्रवण करके वह वक्ता श्रोता ब्रह्मलोक में ब्रह्मा का जो लोक सत्यलोक उसमें पूजित होता है अर्थात् सत्कृत होता है । महीङ् पूजायाम् इस धातु का जो पूजार्थक है उसका रूप है महीयते ॥१६॥

य इमं परमं गुह्यं श्रावयेद् ब्रह्मसंसदि ।
प्रयतः श्राद्धकाले वा तदानन्त्याय कल्पते त दानन्त्याय कल्पते इति ॥१७॥

卐 इति तृतीया वल्ली । इतिकठोपनिषदः प्रथमोऽध्यायः ॥१॥ 卐

जो साधक अति पवित्रतापूर्वक इस परम गोपनीय ब्रह्म चर्चा को ब्राह्मणों के सभा में अथवा श्राद्धकाल में सुनाता है तो वह श्राद्ध अनन्त गुणा अधिक फल देने में सक्षम होता है यानी सम्बाद सुनने एवं सुनाने वाले दोनों अनन्त फल प्राप्त करने में समर्थ होते हैं ॥१७॥

卐 इति लघुदीपिकायां प्रथमोऽध्यायः 卐

यो जनः प्रयतः शुद्धः सन् परमं गुह्यमतिशयेन गुप्तमिदं मया प्रोक्तं नाचिकेतमुपाख्यानमाख्यायिकां

ब्रह्मसंसदि ब्रह्मणः सभायां श्रावयेत् प्रवदेत् । स इत्यध्याहार्यम् । स श्रावको जन आनन्त्यायानन्तफलाय कल्पतेऽनन्तफलयोग्यो भवति । श्राद्धकाले वा प्रयतः सन् यदि तच्छ्रावयेत् तर्हि तच्छ्राद्धकर्माप्यानन्त्यायानन्तफलाय योग्यं भवेदक्षय्यं भवेदित्यर्थः ॥१७॥

卐 इति श्रीभगवद्रामानन्दाचार्यविरचिते
कठोपनिषद आनन्दभाष्ये प्रथमोऽध्यायः ॥१॥ 卐

जो व्यक्ति अत्यन्त शुद्ध पवित्र होकर परमगुह्य अतिशयेन गुप्त हमसे कथित नाचिकेतोपाख्यान अर्थात् इस आख्यायिका को ब्राह्मणों की सभा में श्रवण करावेगा वह व्यक्ति । यहां '**सः**' इसप्रकार कर्तृवाचक पद का अध्याहार करना चाहिये । तब वह अनन्त फल की जो प्राप्ति है उसके योग्य होता है अर्थात् अनन्त फल को प्राप्त करता है । तथा यदि श्राद्धकाल में प्रयत शुद्ध हो करके इस उपाख्यान का श्रवण कराता है तो अनन्त अक्षय्य श्राद्धफल को प्राप्त करता है ॥१७॥

इत्यानन्दभाष्यसिंहासनासीन जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य
श्रीरामेश्वरानन्दाचार्यप्रणीतानन्दभाष्यप्रकाशे
प्रथमोऽध्यायः



अथ द्वितीयोऽध्यायः

पराञ्चि खानि व्यतृणत् स्वयंभूः तस्मात् पराङ्पश्यति नान्तरात्मन् । कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मानमैक्षत् आवृत्तचक्षुरमृतत्वमिच्छन् ॥१॥

स्वयंभू यानी स्वतसिद्ध परब्रह्म ने जीवों के इन्द्रियवर्गों को बाहर की ओर आकृष्ट कर दिव्य दृष्टि का हनन किया है अतः जीवात्मा आत्म भिन्न तत्त्व को ही देखता है अपने अन्तरात्म तत्त्व को नहीं देख पाता है पर कोई धीर पुरुष अमृतत्व को प्राप्त करने की इच्छा से सभी इन्द्रियों को अन्तराभिमुखी करके जीव के अन्तरात्मा तत्त्व परब्रह्म तत्त्व श्रीरामजी को देख लेता है ॥१॥

एकत्रैव सहेन्द्रियकलापैरन्तरात्माऽपि तिष्ठति तथापि तं न सर्वोजनः पश्यति तत्कस्य हेतोरितीममर्थं विविच्य प्रागुक्तं परमात्मतत्त्वं विवेचयितुमाह–पराञ्चिखानि । **खमाकाशं छिद्रमिति यावद् । यद्युक्तत्वादिन्द्रियाण्यपिखानि प्रोच्यन्ते तानि पराञ्चि परानन्तरात्मभिन्नान्बाह्यानर्थान् प्रत्यञ्चन्ति प्रकाशनाय गच्छन्तीति पराञ्चि बाह्यविषयाणि कृत्वा व्यतृणद् हिंसितवान् । हिंसा चात्रेन्द्रियाणामन्तरात्मप्रकाशनसामर्थ्यविरह एव । यद्वा व्यतृणदकरोत्,–बाह्यार्थप्रकाशकान्येव खानि कृतवानित्यर्थः । तृहधातोर्हिंसार्थकस्यापि करोत्यर्थस्वीकाराद् धातूनामनेकार्थत्वात् । एवं**

सृष्टवानित्यत्राह-स्वयंभूः स्वयं भवतीति स्वयंभूः सर्वस्वतन्त्रः । परमात्मेत्यर्थः, अत एव कथमेवं सृष्टवानिति प्रश्नस्यापि नावकाशः । स्वतन्त्रस्य पर्यनुयोगानर्हत्वादितिभावः । तस्मात् परार्थप्रकाशकस्वभावत्वाद्धेतोस्तैः करणभूतैः खैर्लोकः पराङ् पराग्रूपानर्थान् शब्दादीन् पश्यत्युपलभते, अन्तरात्ममन्तरात्मानं न पश्यति । छान्दसो द्वितीयालोपः पराङित्यत्र। एवं स्वभावेष्वपि लोकेषु कश्चिद्धीरः प्रागुपार्जितपुण्यभारप्राप्तपरमात्मप्रसादोऽधिकारी बुद्धिमाञ्जीवोऽमृतत्वमिच्छञ्ज्ञातमोक्षाभिक्षाष आवृत्तचक्षुरावृत्तं विषयेभ्यः प्रत्याहृतञ्चक्षुर्यस्यतादृशः । चक्षुःपदमिन्द्रियान्तरस्याप्युपलक्षणमतः समाकृष्टेन्द्रियग्रामः सन् प्रत्यगात्मानं प्रति प्रतिकूलं विषयेभ्योञ्चतीति प्रत्यक् स चासावात्मा प्रत्यगात्मा तं परमात्मानमित्यर्थः । स्वभावत एव परमात्मनो विषयप्रतिकूलवृत्तिमत्वात् । ऐक्षत् पश्यति छन्दसि कालाविवक्षणात् तत एव परस्मैपदमपि बोध्यम् । नहीन्द्रियाणि सन्तीति सर्वैः परमात्मा द्रष्टुं शक्यः किन्तु लब्धतदीयप्रसाद एवेति भावः ॥१॥

इन्द्रिय समुदाय के साथ एक ही शरीररूप अधिकरण में आत्मा भी रहती है तथापि उस आत्मा को

सभी व्यक्ति नहीं देख सकते हैं इसमें क्या कारण है इस विषय का विवेचन करके पूर्वकथित जो परमात्मतत्व है उसका विवेचन करने के लिये कहते हैं-'**पराञ्चिखानीत्यादि**' ख नाम है आकाश का अर्थात् छिद्र । जिस आकाश से युक्त होने के कारण इन्द्रिय को भी 'ख' कहते हैं । उन इन्द्रियों को पराग्वर्ती बनाया । अर्थात् आत्म भिन्न बाह्यार्थ के प्रकाशन योग्य बाह्यार्थ विषयक बना करके इन्द्रियों की हिंसा कर दी गई । यहां हिंसा शब्द का अर्थ है आत्मप्रकाशन सामर्थ्य रहितत्व । अथवा '**व्यतृणत्**' इसका अर्थ है अकरोत् । यद्यपि तृह धातु हिंसार्थक है तथापि धातु के अनेकार्थक होने से कृ धातु के अर्थ को ही बतलाता है । किसने इन्द्रियों को ऐसा बनाया इस जिज्ञासा के उत्तर में कहते हैं-'**स्वयंभूः**' स्वयमेव जो हो उसे स्वयंभू कहते हैं अर्थात् सर्वतन्त्र स्वतन्त्र परमात्मा । अत एव ऐसा क्यों बनाया ऐसा प्रश्न नहीं होता है क्योंकि सर्वस्वतन्त्र व्यक्ति नियोग पर्यनुयोग के योग्य नहीं होता है । इसलिये बाह्यार्थ प्रकाशन करने में समर्थ इन्द्रियरूप करण द्वारा साधारण मनुष्य बाह्य शब्द रसादिक को ही देखता है । किन्तु **अन्तरात्मन्** अन्तरात्मा को नहीं देख सकता है । अन्तरात्मन् यहां द्वितीया विभक्ति का छान्दसत्वात् लोप

हो गया है। एतादृश स्वभावयुक्त भी इस लोक में कोई धीर पूर्वजन्म में उपार्जित जो पुण्य समुदाय है उसके द्वारा भगवत्प्रसाद को जिसने प्राप्त करलिया है एतादृश अधिकारी बुद्धिमान् जीव अमृतत्व मोक्ष की इच्छा से विषय से इन्द्रिय को प्रत्याहृत करके यहां चक्षु पद अन्य इन्द्रिय का भी उपलक्षक है तव विषय से इन्द्रिय समुदाय को हटा करके '**प्रत्यगात्मानम् प्रति**' विषय से प्रातिकूल्यता को प्राप्त करे उसे कहते हैं '**प्रत्यक्**' प्रत्यक् जो आत्मा उसे कहते हैं प्रत्यगात्मा अर्थात् परमात्मा। स्वभावतः परमात्मा विषय से प्रतिकूल है। एतादृश परमात्मा को देखता है। छन्द में काल की विवक्षा नहीं है तथा छान्दस होने से '**ऐक्षत्**' में परस्मैपद भी है। इन्द्रिय है इसलिये सभी परमात्मा को देखेंगे ऐसा नहीं किन्तु जिस जीव के ऊपर भगवान् की कृपा होती है वही पुण्यात्मा व्यक्ति भगवान् को देखता है ॥१॥

पराचः कामाननुयन्ति बालास्ते मृत्योर्यन्ति विततस्य पाशम्। अथ धीराः अमृतत्वं विदित्वा ध्रुवमध्रुवेष्विह न प्रार्थयन्ते ॥२॥

जो बाल-कम समझवाले बाह्य विषयों का अनुगमन करते हैं वे बाहरी विषयों में लीन जन सब जगह व्याप्त मृत्यु के पाश को प्राप्त कर जाते